तपस्विनी

•

कवि :
श्री गंगाधर मेहेर

•

अनुवादक :
योगेश्वर त्रिपाठी 'योगी'

•

न्यव
स्म श्री नन्दकुमार जी
को
सप्रेम भेंट
योगी
१३-५-८४.

तपस्विनी

हविकल थी वैदेही उस सरित पुलिनपर खड़ी हुई !
प्राचीदिशि में ही निहारती दृष्टि असीमित अड़ी हुई !!

कवि :
श्री गंगाधर मेहेर

●

अनुवादक :
श्री योगेश्वर त्रिपाठी "योगी"

●

अनुवादक एवं प्रकाशक
योगेश्वर त्रिपाठी 'योगी'
सी/१२३ सेक्टर ६ राउरकेला-२ (उड़ीसा)

•

आवरण
श्री ब्रजनन्दन शर्मा "अकेला"

•

प्रथम संकरण (१००० प्रतियां)
मूल्य - एक प्रति पांच रुपये

•

मुद्रक
श्री रामशंकर गुप्ता
श्रीप्रताप प्रेस
चक्रधरपुर, सिंहभूम
बि हा र

वितरक
पं० उमाशंकर त्रिपाठी
गोविन्द गोपाल भवन
१८/२५ कुरसवाँ
कानपुर-१

स म र्प ण

हे अम्ब ! तेरी अर्चना का अन्य कुछ साधन नहीं,
आराधना की साधना बस साध बनकर ही रही ।
लीला तुम्हारी अतिविचित्र विनाशिनी त्रय तापकी,
सादर समर्पित आपही को वस्तु जो कुछ आपकी ॥



अकिंचन
योगेश्वर त्रिपाठी "योगी"

मंगलाचरण

भवानीशंकरं वन्दे
नित्यानन्दम् जगद्गुरुम् ।
कामदं ब्रह्मरूपं च
भक्तानामभयप्रदम् ॥

प्राक्कथन

राउरकेला : १९६७ किंजल्क काव्य संकलन के विमोचन पर आयोजित कविगोष्ठी। कविगोष्ठी में जिन जिनकी रचनाओं ने मुझे आकृष्ट किया था उनमें एक व्यक्ति से मैं विशेष प्रभावित हुआ था। वे थे 'योगी जी' श्री योगेश्बर त्रिपाठी 'योगी'। कारण, उड़िया के महाकवि श्री 'मेहेर' की अत्यन्त प्रसिद्ध काव्यकृति तपस्विनी का अनुवाद-अंश का अनुवादक द्वारा पाठ।

तपस्विनी उडिया काव्य साहित्य का ही नहीं, विश्व काव्य साहित्य की अनमोल मिधि है। इतना मार्मिक काव्य कि पाठक, श्रोता बिना विमोहित हुये नहीं रह सकता।

और अब 'योगी' का हिन्दी अनुवाद सामने है। देखता हूँ काव्य में ऐसे-ऐसे प्रसंग आये हैं कि नयन झरे बिना नहीं रहते।

उड़िया लिपि की जानकारी नहीं होने के कारण मूल मैंने नहीं पढ़ा पर अनुवाद पढ़ते समय ऐसा नहीं लगता कि मूल नहीं पढ़ रहा हूँ।

मुझे उड़िया साहित्य मर्मज्ञ मित्रों से अनुवाद की अविकलता की जानकारी मिली तो मैं गदगद हो उठा। किंजल्क के विमोचन पर अध्यक्षीय भाषण में मैंने योगी जी से अनुरोध किया था कि वे तपस्विनी का अनुवाद कार्य पूरा करें। इसके बाद काबुली तगादा करता रहा।

समय गुजरता गया। योगी जी लगे रहे, लगे रहे। प्राण-पण से भिड़ गये। यह योगी की साधना है। एक तपस्वी की तरह वे डटे रहे। मूल पढ़वा कर सुनते, अनुवाद करते। पर सन्तोष नहीं हुआ तो उडिया लिपि का ज्ञान किया और पूरे १२ वर्ष श्रम करके हिन्दी संसार के लिए तपस्विनी सुलभ किया।

'तपस्विनी' का अनुवाद कोई साधारण कार्य नहीं है। मात्र हिन्दी उड़िया की जानकारी, विद्वत्ता, काव्य कौशल, श्रम से ही कोई भी कवि अनुवाद कर लेगें, ऐसी बात नहीं है।

तपस्विनी, श्रीराम की भार्या जगत्-जननी सीता की गाथा है। इसके अनुवाद के लिये भक्त हृदय के साथ-साथ उनके वरदहस्त की आवश्यकता है, ऐसा मैं मानता हूँ।

'योगी' का संस्कार ही ऐसा है कि वे तपस्विनी कृति पर सहज आकृष्ट हुये। प्रभु की ओर से अनुवादक का श्रेय, अनुगायक का श्रेय योगी जी को मिलना था–मिला, नहीं तो वहुत पहले हिन्दी अनुवाद हो गया होता।

योगी के श्रीमुख से अनुवाद सुनने का भी सौभाग्य मिला है। मधुर-कंठ से सस्वरपाठ किस सहृदय व्यक्ति को अभिभूत नहीं करेगा। मैं भी अभिभूत हुआ हूँ, औरों को अभिभूत होते देखा है।

योगी जी ने अनुवाद पूरा करके मेरा आग्रह रखा है। मैं उन्हें साधुवाद क्या दूँ? मैं तो इस कार्य के लिये अनुगृहीत हूँ, ऋणी हूँ।

राष्ट्र भारती के अकिंचन सेवक के नाते योगी जी का इस कृति के साथ मैं स्वागत करता हूँ।

कवि सभा
सीताराम पथ, चक्रधरपुर।

शशिकर
शरद् पूर्णिमा १९७५

: स्वोक्ति :

काव्य कवि के अन्तर का मधुर गान है तथा उसकी बुद्धि का सौन्दर्य है। वह हृदय की वस्तु है। उसकी आत्मा रस है। तुलसी के शब्दों में हृदय सागर के समान है जिसमें बुद्धि रूपी सीप पड़ी है। शारदा ही स्वाति नक्षत्र के रूप में जब सुन्दर विचारों और कल्पनाओं की वृष्टि करती है तब बुद्धि रूपी सीप से कविता रूपी मोती निकलते हैं।

आज से चौदह वर्ष पूर्व इस्पात नगरी राउरकेला में "कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज जयन्ती समारोह में मुझे सहसा "उडिया-साहित्य" ने अपनी ओर आकृष्ट किया। श्री प्राण नाथ महन्ती के वक्तव्य में चर्चित" तपस्विनी में प्रकृति वर्णन" की कुछ पंक्तियों से इतना प्रभावित हुआ कि अपनी भाव धारा को न रोक सका! मैं उन पंक्तियों को बार-बार गुनगुना उठता और भक्त श्री गंगाधर मेहेर के कल्पित चित्र के समक्ष नत मस्तक हो जाता था। उस समय किसी विद्वान का कथन मेरे मानस-मुकुर मेंप्रतिबिम्बित हो उठता —

"कवीनां मानसं नौमि तरन्ति प्रतिभाम्भसि।
यत्र हंस वयांसीव भुवनानि चतुर्दश ॥"

"कवि के हृदय रूपी मानसरोवर को नमस्कार करता हूँ जिसके प्रतिभा रूपी जल में चौदहो भुवन हंस की भांति-संतरण करते रहते हैं।"

सहसा एक भावना रह रह कर अन्तर को उद्वेलित करती कि जैसे भी हो इस ग्रन्थ का अनुवाद हिन्दी में किया जाय। सहयोगियों से उत्साहित होकर इस महत्कार्य का बीड़ा तो उठा लिया किन्तु मैं स्वयं को इस कार्य मे अक्षम पाता था। प्रश्न था भाषा सीखने का अगले दिन मित्रों ने "त्रिभाषी" लाकर मेरे सामने रख दी और उनके सहयोग से अध्ययन का कार्य बढ़ने लगा। छह महीने के कठिन परिश्रम ने मुझे उड़िया पढ़ना सिखा दिया। मैंने नित्य "तपस्विनो" का पाठ करना प्रारम्भ किया। मैं जब जब उसे पढ़ता आँखों से अश्रुपात होने लगता था। ललित शब्द-संगठन. कर्णप्रिय अनुप्रास तथा भावों की सरस व्यंजना उक्त ग्रन्थ में अनुप्राणित सी हो गई थी। प्रकृति का सजीव चित्रण, मनोभावों का मानवीकरण तथा भारतीय नारी-हृदय की झाँकी कवि की अपनी विशेषता थी। ओज माधुर्य एवं प्रसाद गुण की पूर्णता तो देखते ही बनती थी। गुरु-कृपा से अनुवाद का कार्य मन्थर गति से चल पड़ा। "स्टील मेंल्टिग शाप" के व्यस्त क्षणों में रहते हुए साहित्य की सेवा करना कुछ कठिन हो गया और कुछ सर्गों का ही अनुवाद करके लेखनी रुक गई। आलस्य और प्रमाद में पाँच वर्षों का मध्यान्तर हो गया। इसी समय (स्व०) श्री दिनकर जी से भेंट हुई। उन्हें "तपस्विनो" के कुछ अंश सुनाने का सौभाग्य मिला। उन्होंने आशीर्वाद दिया और उनकी ही सम्पति से इस ग्रन्थ का प्रथम सर्ग दिसम्बर १९६९ में शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा "भाषा" नाम की पत्रिका में प्रकाशित किया गया। बिभिन्न स्थानों से प्रोत्साहन और आशीर्वाद मिले! मुझे आत्मिक बल मिला और अनुवाद का कार्य फिर से आगे बढ़ने लगा! आचार्य शशिकर ने मुझे इस कार्य को शीघ्र ही समाप्त करने के लिए वाध्य कर दिया! मैंने परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना की और उन्हीं की असीम कृपा से मेरा परिचय श्री महेश्वर पण्डा से हुआ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे इस गुरुतर कार्य को सरल बनाया! मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। बिना किसी अदृष्ट शक्ति के यह कार्य करना अत्यन्त कठिन था। भगवान की कृपा, गुरुदेव का आशीर्वाद तथा मित्रों की सद्भावनाओं ने मुझे निरंतर साहस प्रदान किया!

उड़ीसा सरकार ने आर्थिक सहायता प्रदान करके इसके प्रकाशन में मुझे सहयोग दिया है एतदर्थ मैं धन्यवाद प्रदान करता हूँ!

श्री ब्रजनन्दन शर्मा—ने आवरण सज्जा का, श्री रामशंकर जी ने मुद्रण का तथा श्री तारा चन्द्र जैन ने संशोधन का भार अपने ऊपर लेकर मुझे चिन्ता मुक्त कर दिया। इन सबकी कृपा के फल स्वरूप ही "तपस्विनी" का यह भाषा रुपान्तर विज्ञ समुदाय के समक्ष उपस्थित है! यथा सम्भव शब्दों और भावों को भी उसी रूप में अपरिवर्तित रखने की चेष्टा की गई है।

जिन जिन प्रेमी महानुभावों ने इस कार्य में मुझे किसी भी प्रकार से सहयोग प्रदान किया है, मैं उन सबका हृदय मे आभार प्रकट करता हूँ। इसमें जो भी त्रुटियां रह गई हों उसके लिए सहृदय पाठकों से अनुरोध है कि उन्हें इंगित करने की कृपा करें। यह कृति यदि किसी प्रकार से हृदय में आनन्द की रसधार प्रवाहित कर सको तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा।

विनीत :

योगेश्वर त्रिपाठी 'योगी'

सी/१२३ सेक्टर–६

राउरकेला–२

(उड़ीसा)

स्थायी पता शंकर सदन 17/13 मालरोड, कानपुर -208001

राउरकेला

राखी पूर्णिमा

२१-८-१९७५

- स्व० श्री गंगाधर मेहेर और उनकी कृतियाँ -

उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्ध में उड़िया साहित्य में एक अभिनव युग प्रारंम्भ हुआ ! प्राचीन शैली और कथानक को नवीनता प्रदान करने की पद्धति के सृष्टा कविवर श्री राधानाथ जी हुए ! नूतन कथा वस्तु, छन्द एवं शब्द योजना, वर्णन चातुर्य तथा युक्त अलंकार मण्डन आदिगुणों के कारण वे एक युग प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। श्री गंगाधर मेहेर इसी नूतन युग की सृष्टि के रूप में आलोकित हुए और तत्कालीन काव्य क्षेत्र में अग्रसर होने वाले समुदाय में इनका स्थान सर्वश्रेष्ठ था। प्रकृतिचित्रण और मानव चित्रण का मौलिक दृष्टिकोण, रचना विन्यास की स्वच्छन्दता आदि गुण इनके काव्यों की एक विशेष उपलब्धि है।

कवि जन्मजात होते हैं बनाए नहीं जाते ! श्री मेहेर के विषय में यह बात पूर्ण रूपेण घटित होती है। इनका जन्म सम्बलपुर जिले के बरपाली नामक ग्राम के एक साधारण बुनकर परिवार मे राखी पूर्णिमा के दिन सन् १८६२ में हुआ था। इनके पिता का नाम चैतन्य मेहेर और माता का नाम सेवती था। इन्हे किसी अच्छे स्कूल में पढ़ने का

सौभाग्य नहीं मिल सका। गाँव के छोटे मोटे स्कूल में दाखिला लेकर घर में कपड़ा बुनने की भी शिक्षा प्राप्त करनै लगे। प्रथम कक्षा से लेकर पाँचवी कक्षा तक वे पढ़ाई के साथ साथ अपने माता पिता को वस्त्र निर्माण में सहायता देने लगे। घर का कार्य करते हुए भी स्कूल का काम करते थे और यदि कुछ समझ में न आता तो शिक्षक तथा सहपाठियों से पूछ कर अपना काम पूरा करते थे। इनके पिता की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी अत: केवल पाँचवी कक्षा का ही प्रमाण पत्र प्राप्त कर सके। पं० घनश्याम मिश्र से उन्हें संस्कृत की शिक्षा मिली तथा उन्होंने "रघुवंश" का अध्ययन किया। बचपन से ही वे धर्मानुरागी थे। प्राचीन उड़िया तथा संस्कृत साहित्य में इन्हें विशेष रूचि थी। प्रारम्भ में इन्होने "रस रत्नाकर" नाम की एक कविता लिखी। वरपाली के एक युवराज के गृह शिक्षक श्री सूर्यकुमार मिश्र ने इन्हें कविता लिखने के लिए उत्साहित किया जिसके फलस्वरूप इन्होने "अहल्यास्तव" लिख कर श्री राधानाथ जी के पास भेजा। उन्होने एक पत्र लिखकर इनका उत्साहवर्धन किया। इन्हे प्रेरणा मिली और सर्व प्रथम "इन्दुमती" तथा "उत्कल लक्ष्मी" नामक काव्यग्रन्थ लिखे! समय व्यतीत होता गया और सरस्वती के इस वरद पुत्र की लेखनी से "कीचक-बध", "पद्मिनी", "तपस्विनी", "कविता कल्लोल", "प्रणय वल्लरी", "अर्घ्य-थाली", तथा "अयोध्या दृश्य" आदि ग्रन्थ लिखे गए। इनके काव्य में इनके समृद्ध मानस-साम्राज्य का परिचय प्राप्त होता है किन्तु इनके जीवन का पर्याप्त परिचय नहीं मिलता। फिर भी आपने "तपस्विनी" तथा "इन्दुमती" काव्य के प्रारम्भ में प्रसंग वश कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं।

"दरिद्रता पंक पूर्ण मो जीवन सर।
जंजाल जलद जले आविल उदर।।"

—"तपस्विनी"

पुण्य हीन जीवन मा अज्ञता पूरित,
केमन्ते तहिँरे हेबो प्रतिभा स्फुरित !
लभि नाहिं ज्ञान मात्र करूछूँ भजना,
लेखनी बदने करि तोर नीराजना ।।"

—"इन्दुमती"

वे जन्म जात कवि थे । अतः स्वल्प शिक्षा का प्रभाव इस क्षेत्रपर नहीं पड़ा । वे एक नीरव साधक थे । इनकी प्रतिभा से प्रभावित हो कर बरपाली के जमीन्दार लाला नृपराज सिहदेव ने सात रुपये मासिक वेतन पर अमीन के पद पर इनकी नियुक्ति की और फिर उनकी कृपा से जुडीशियल मोहर्रिर बने ! अन्त में इन्हें सन् १९१७ में सरकारी पेन्शन मिलने लगी !

श्री गंगाधर मेहेर ने अपनी जातीय कुरीतियों को हटाने के लिए जातीय महासभा का आह्वान किया जिसमे विभिन्न अंचल से हजारों की संख्या में आकर प्रतिनिधियों ने भाग लिया था । तत्कलीन युग के वे एक स्वाधीन चेता मनीषी थे ! उन्हे गर्व तथा आडम्बर से घृणा थी । साहित्य एवं समाज की सेवा करते हुए ४ अप्रैल सन् १९२४ को वे परलोक सिधार गए ! साहित्य जगत उनका चिर ऋणी रहेगा ।



॥ श्री गणेशाय नमः ॥
॥ श्री सद्गुरु परमात्मने नमः ॥

(प्रथम सर्ग)

ज्योति पुंज से ज्योतित होता शुभ्र शुद्ध निर्मल वर-वेश,
बोल कौन तू ? इन्द्र-नील-द्युति विजयी तेरे मनहर केश।
तन की आभा से आभासित, कान्ति भेद कर सुन्दर वास,
आह्लादित करती अन्तर को, भरकर पावन परम प्रकाश।

तन की आभा चारुचन्द्र की शुभ्र ज्योत्स्ना-सी उज्ज्वल,
भीति भाव से केश-राशि-मिस तम लुण्ठन करता पदतल।
छिटक छिटक कर सुविरल, सुन्दर और समुज्ज्वल ताराग्रह,
मण्डित करते रत्न-राशि-भूषा से, नित तेरा विग्रह।

कौशल से अवगुंथित शोभित अगणित धवल गले के हार,
जगत मुग्ध करता तन-सौरभ प्राणों में सुख का संचार।
कर कमलों से ढुलकाती हो कौन सुधा ? जग करता पान,
उसी शक्ति से देव सदृश् मानव भी हो जाते द्युतिमान।

अरे कौन सा मन्त्रदान करती है तू चुन-चुन कर लोक ?
कर विनष्ट तम-तोम-जाल को सृजन कर रहे वे आलोक।
कलित-ललित पावन पदांक में फूलरहे अगणित शतदल,
अस्तु कौमुदी से तन-द्युति की उपमा होती नहीं सफल।

दुख-दरिद्रता पाप-पंक से पूर्ण हमारा जीवन-सर,
जगती के जंजाल-जलद के पंकिल जल से भरा उदर।
सुखद शरद् ऋतु के समान ही पाकर तेरा शुभ दर्शन,
होते साकार सभी सपने पुलकित होता है जन जीवन।

तेरे पावन-पद-स्पर्श से विकसित होता हृदय कमल,
सत्य कहो, क्या उसने पाया तेरे चरणों का संबल ?
पावन पद के पुण्य परस से हुआ अचानक मन मोहित,
देवि दयामयि ! दया दीन पर कर दे यथा विचार विहित।

वाल्मीकि-आश्रम अभिमुख हो दौड़ रहा है चंचल मन,
निर्वासिता सती सीता के करने को पावन दर्शन।
सह्य हुई कैसे जननी को मन की दारुण विरह-व्यथा,
कौन बना सहचर कानन में सुनने को वह करुण कथा ?

वीणावादिनि ! शक्ति-कुम्भ में देदे कृपा-नीर भरकर,
लखकर अम्बे ! मन पवित्र हो और हाथ गाथा लिखकर।
भागीरथी विजन कानन से लय में हर हर कहती थी,
होड़ लगाती उपकूलों से तरल तरंगें बहती थीं॥

दर्शन करने को वनछवि आकुल तन से आगे बढ़ते,
विकल प्राण से परिचालित हो पावन पथ में पग पड़ते।
विरह विकल थी वैदेही उस सरित पुलिन पर खड़ी हुई,
प्राची दिशि में ही निहारती दृष्टि असीमित अड़ी हुई॥

नेह विन्दु नीरज नयनों से ढुलक रहे थे झर झर झर,
कर प्रकाश वेदना विरह की पड़ते थे वक्षस्थल पर।
घुमड़ घुमड़ घिरते अम्बर में जैसे जलधर हर्षा कर,
अस्ताचल प्लावित करते हों मानो जलकण बर्षाकर॥

जीवन की अरुणिम सन्ध्या में सरसी में सरसिज तिरते,
या करीन्द्र निज शुण्ड-नीर से उनका अभिसिंचन करते।
व्याकुलता से नाथ! नाथ!! ही कहपाती थी आनन से,
दुसह वेदना-सी बैठी थी श्रान्त क्लान्त कोमल तन से।

हो कर संज्ञा शून्य जानकी हाय! गिर पड़ी भूतल पर,
नहीं पास था कोई भी जो दे सकता प्रश्रय पल भर।
सेवा करतीं अमित दासियाँ सदा जानकी के पद की,
नहीं पार्श्व में कोई सहचर आज घड़ी में आपद की।

अरे! नियति के दमनचक्र की है भयंकरी रीति यही,
जिसे देखकर किसके मनमें भर जाएगी भीति नहीं?
खग-कलरव मिस देख दशा क्रन्दन कर उठा गहन कानन,
क्रोधित हो निःश्वास रूप में लगा डोलने प्रखर पवन।

स्पन्दित थे प्रश्वास रूप में प्रखर पवन के सर-सर स्वर,
काँप उठे पल्लव तरु के फैली करुणा की एक लहर।
देख देख कर चतुर्दिशाएँ चकित, नीर भर लोचन में,
कानन चारी हरिण रह गये स्तब्ध, मौन, विचलित मन में।

जननी क रोदित आनन को देख रहे मृग शावक गण,
समझ नहीं पाते थे कुछ भी करने लगे स्वयं क्रन्दन।
करने को क्रोधित हो कर दुर्दान्त नियति के साथ समर,
ताल-वृक्ष गरजा गुमान से लेकर कर में खड्ग प्रखर।

बया-नीड़ तूणीर हिला कर शूर-वीर सा बारम्बार,
करने लगा नियति के ऊपर पत्र-वाण से घोर प्रहार।
सरिता की कम्पित लहरों से उछल उछल कर जल-सीकर,
गिरते थे तटनो के तटपर, तज कर तरल तरंग शिखर।

या तरंग की तुंग तोप में भर कर लघु शीशक गोली,
करती गंग प्रहार नियति पर गर्जित हर हर की बोली।
विचलित सकल कमल हो क्रोधित चंचल सरसी में सरसे,
पद्मव्यूह रच आहत करने लगे नियति को अलि-शर से।

कोमल कलित कुसुम कानन के पड़े हुए थे भूतल पर,
मल्लयुद्ध कर यथा नियति से गिरे धूलि धूसित होकर।
मकड़ी भी कर छिन्न तंतु निज कठिन नियति के दृढ़ वन्धन,
करने लगी बंक भृकुटी को होकर क्रोधित आस्फालन।

व्याकुल होकर छिन्न हृदय से क्षीणकाय नभ के वादल,
दौड़ पड़े घनघोर क्रोध में सजकर अपना सब दल-बल।
तड़ित तुल्य लोचन चमका कर घन घनगर्जन करते थे,
क्रोधित हो दुर्दान्त नियति के ऊपर तर्जन करते थे॥

वारिधरों ने भूमिसुता के मुख पर रस····वर्षा कर दी,
सींच सींच कर शीतल जल से तन में चेतनता भर दी।
दुर्विशाक के दमन चक्र में चक्रित रवि-कुल की लाली,
नहीं सके जब देख चलदिये छिप जाने को दिनमाली।

दिगवधुएं यह दृश्य देख कर सब हो गईं विशीर्ण वदन,
काँप उठा अम्बर अवनी में, भरने लगा करुण क्रन्दन।
फिरी चेतना वैदेही को ज्ञात नहीं कितने क्षण में,
कातर दृष्टि भ्रमित-सो पड़ती चारों ओर बिजन वन में।

जिधर देखती उन्हें दिखाई दिये राम राजीव नयन,
सिर में दिये सुभग करपल्लव बैठे हुए विशीर्ण वदन।
रघुवर के सामने खड़े थे युग कर जोड़े धीर लखन,
निर्झर से अविरल झरते थे नीरव कातर-नीर नयन।

समाचार साध्वी सीता के नहीं पूँछ पाते रघुवीर,
कण्ठ रुद्ध सौमित्र हुए मन व्यथित हो गया शिथिल शरीर।
सीता ने देखा दिनमणि को दिखे वहाँ भी श्री रघुनाथ,
बैठे थे विशीर्णमन नत मुख मस्तक टेके अपने हाथ।

सुर सरिता की ओर जा रुके जब सीता के नेत्र ललाम,
पड़े दिखाई व्याकुल चलते भागीरथ के पीछे राम।
अश्रुविन्दु राघव - लोचन से गंगधार-सम थे गिरते,
कभी निमज्जित होते रघुवर कभी उसी में थे तिरते।

फिरा वहाँ से दृष्टि देखने लगी गर्भ निज जनक-सुता,
हंत ! हंत ! हो गये पुन युगनेत्र सतो के नीर युता।
नहीं बैठना समझ उचित निज कन्त कान्ति-सी दूर्वा पर,
प्रस्तर पर बैठने जानकी बढ़ी तुरत व्याकुल होकर।

किन्तु सोच करके कुछ मन में नहीं जा सकी वह उस ओर,
हो न सका रोदन अवरघोन हुई बिकल वेदना विभोर।
व्याकुलता के आर्तनाद से हाय विदग्ध हुआ आनन,
व्यथित भूमिजा के विलाप से स्तब्ध हो गये वन-उपवन।

दुःख से कातर दग्ध हृदय से कह उठती हा प्राणेश्वर,
हा ! करुणा सरिता के सागर प्रियतम हा ! सनेह जलधर।
किस कुलग्न में हाय ! हाथ इस हतभागिनि का ग्रहण किया,
मुझे नहीं मेरे स्वरूप में करुणालय का वरण किया।

नहीं मान कर मैंने अपने प्रभु की गुरूतर महिमा को,
धनुष बनाया लक्ष्य आँकने को उनकी भी गरिमा को।
हे मदगंजन उस पिनाक को इक्षु दण्ड-सा कर भंजन,
उसके ही मधुरस-सी मुझको रहे मानते मन रंजन।

नहीं मान कर विजन-भ्रमण में मुझको पैरों की जंजीर।
सहगामिनी बनाया मुझको शुचि सनेह से हे वर वीर,
पद शांकुलि को परम प्रेम से पावन बना गले का हार,
पुण्य पुंज से पुण्यतीर्थ के पुण्याश्रम में किया विहार।

नहलाया करते थे मुझको नेहनीर से नित वन में,
कैसे भूलूं उस अतीत को समा गया जो जीवन में।
क्षुधित प्रिया को देख उटज में तुम आकुल हो जाते थे,
गहन विपिन से तुरत तोड़कर कन्दमूल फल लाते थे।

तृणशैय्या पर नींद नहीं आती जब मुझे सुलाने को,
अंक पालना सज्जित करते झूला मुझे झुलाने को।
मेरे तुच्छ प्रेम के कारण लाँघा कठिन महार्णव था,
बलशाली लंकाधिराज के संग में किया महाहव था।

सहन किये थे रण-प्रांगण में अगणित दारुण शस्त्र-प्रहार,
क्षत जितने भी लगे बदन में माना उन्हें हृदय का हार।
उसी हार के पदक के लिए चुनकर के उपयुक्त अणी,
दुर्गम लंका विजय-माल को मुझे बनाया मध्यमणी।

व्रण चिन्हों को देख-देख जब क्षोभ उमड़ता था मन में,
सदा तोषते रहते थे तुम मुझे सुधामय भाषण से।
कहते थे तुम समर-यज्ञ में देकर रक्ताहुती सफल,
परम पुण्यमय अचल सिद्धि तुम सी विभूति पाई निर्मल।

मिटे नहीं थे अद्यावधि भी उन कठोर बाणों के चिन्ह,
किन्तु हाय! मैं ही अभागिनी हुई आज प्रिय तुमसे भिन्न।
उस अतीत के मधुर मिलन को नाथ! नहीं रखना मन में,
हाय! नहीं तो आकुल होंगे आप दुःख से क्षण-क्षण में।

मैं क्या? दासी तुच्छ. आप हों अखिल अनूप प्रकृति रंजन,
करूँ मरण का वरण, नाथ का हो जाए कलंक भंजन।
इसके द्वारा जन्मग्रहण कर लेगी अक्षय कीर्ति विशेष,
नवल कीर्ति की कल्पित प्रतिमा हृदय बसा लें हे प्राणेश।

यही दिवाकर ज्योतिपुंजमय आदि जनक हैं रघुकुल के,
सदा मुक्त कर त्रिभुवन-मोहन दाता हैं मुद मंगल के।
भागीरथी धरा-धात्री-सी अनुपम ओज उजासी है,
चिर विख्यात तुम्हारे कुल की कीरति धवल-ध्वजा-सी है।

उसी कीर्ति की रक्षा के हित किया आपने मेरा त्याग,
प्रभु यह तो उपयुक्त कार्य था शोभनीय तुमको बड़भाग।
किन्तु कीर्ति की धवल-ध्वजा में कलंकिनी पापिनि का चित्र,
रह जाएगा युग-युगांत तक हुआ यही अति विषमय विचित्र।

धिक् धिक् मेरा जीवन हे प्रभु! मुझ एकाकी के कारण,
होकर भी अकलंक किन्तु बनगये आप अपयश-भाजन।
छोड़ आपके श्रीचरणों को जग में कहाँ रहूँगी मैं,
नहीं जलाती आग मुझे फिर किससे और दहूँगी मैं?

रहे सँजोए कान्ति तुम्हारी विजन-विपिन के दूर्वाचय,
उसे छोड़ कर और गहन में ग्रहण करूँ किसका आश्रय ?
प्रस्तर भी पाते चेतनता कृपा-वारि-सिंचित होकर,
कहीं न मेरे साहचर्य से रह जाएँ वंचित होकर।

प्रस्थापित जो किया गर्भ में मेरे अनुपम रत्ननिधान,
नहीं कहा उसके रक्षण का मुझसे कोई उचित विधान।
दृढ़ आशा मेरे अंतर में थी चिरदिवसों से पोषित,
रघुकुल का यह रत्न करेगा गोद प्रभू की आभूषित।

किन्तु हुआ आकाश-कुसुम मेरी आशाओं का परिणाम,
धन्य धन्य रे दैव ! तुझे है मेरा शत-शत बार प्रणाम।
जिसके जनक अमित तेजस्वी महाराज हैं महिमानी,
उनके सुत की दशा, नियति ने है क्या करने की ठानी ?

यदा कदा जब हो जाता है गिरि के ऊपर वज्र प्रहार,
हाय ! साथ गिरि के हो जाता गिरि वासी-जन का संहार।
धन्य धन्य हे नाथ ! आपका आनन सरस सुधा निर्झर,
हृदय अद्रि-सा अमृत पूर्ण हिम-शैल शिलाओं का आकर।

जब हो कर अभितप्त ताप से हिय-हिमाद्रि तपता सारा,
तब भी पिघल पिघल आनन से बहती चारु सुधा-धारा।
सहसा सुनकर असहनीय मेरी दारुण अपवाद कथा,
निश्चय हो उत्पन्न हुई होगी अन्तर में महा व्यथा।

कहीं नहीं करुणानिधि ने फिर भी कोई निष्ठुर भाषा,
त्याग कर दिया केवल मेरा देकर के मधुमय आशा।
मेरे ही अर्जित पापों ने सृजन किया दुःख जीवन में,
एक एक करके आते रहते हैं वे मेरे मन में।

महिमा सागर की महिमा को मैंने साधारण जाना,
"त्राहि लक्ष्मण" आर्त्तनाद को अपने ही प्रभु का माना।
लक्ष्मण को अतिनीच समझना था कलुषित मन का आभास,
बलपूर्वक हठ करके मैंने भेजा उनको प्रभु के पास।

अभिवर्धन के हेतु नाथ को महती कीर्ति नवल उद्दाम,
पापिनि का चिर दुखद त्याग था उसके पापों का परिणाम।
किया तिरस्कृत था मैंने निर्दोष लक्ष्मण को जैसा,
उचित और अनुसार उसीके पुरस्कार पाया वैसा।

करने को अपने समीप से दूर लक्ष्मण को मैंने,
विषम वज्र-सम वचन-बाण से नम्र हृदय बेधा मैंने।
भक्ति भाव से भरे लक्ष्मण करके मेरा अभिवादन,
हुए दूर मुझ से पल भर में कह कर के सुबिनीत वचन।

सद्यछिन्न मस्तक स्वामी का लेकर आया दशकंधर,
करने लगा प्रदर्शन पापी नयनों के सम्मुख सत्वर।
मस्तक छिन्न देख स्वामी का और अधिक हो गई अधीर,
व्याकुल प्राण करुण-क्रन्दन से बहने लगा दृगों से नीर।

शीश देख कर निजस्वामी का नहीं प्राण ने किया गमन,
उसी पाप के फल स्वरूप मैं होती हूँ जीवन्त दहन।
समझ आपेक पद-कमलों की सेवा के सुख का लघुतर,
आश्रम दर्शन अभिलाषा को हाय ! मान बैठी सुख-कर।

करवाया है उसी पाप ने महाराज-श्री से अन्तर,
वही पाप कह रहा पापिनी ! जो इच्छा हो सो तू कर;
नहीं बसे तुम अवध राज में राजलक्ष्मी के हो कर,
रमे राम तुम चिरदिन वन में साथ-साथ मुझको लेकर।

राज्यश्री ईर्ष्यालु खेल में लगा रही थी अपनी घात,
सहन नहीं कर सकी अधिक दिन करने लगी अमित उत्पात।
जिसके दु ख से दुःखी हुआ करते थे नित पुरजन-परिजन,
हृदय दुखाने को उनके करवाया मेरा निष्कासन।

अवध पुरी में शौत-शक्ति की महिमा है चिर गरीयसी,
नहीं पार पाती है उसका पति शक्ति भी महीयसी।
फलने के उपरान्त पराक्रम कैकेयी का अति अविचल,
हुआ उपस्थित उसी देश में आज राजलक्ष्मी का बल।

''करने को मैं सदा प्रजा के मनरंजन का आयोजन,
कर सकता हूँ प्राण-समा पत्नी सीता का निर्वासन।
अष्टावक्र मुनी के आगे दिये वचन जो राजेश्वर''
कहीं न प्रण हो जाय शिथिल वह करो स्मरण हे प्राणेश्वर।

पिता वचन के पालन में तुम रहे सदा अभिमुख जैसे,
निज पति की आज्ञा पालन में मुझ को दुःख होगा कैसे ?
तभी तुम्हारे पत्नी-पद की मैं हो पाऊँगी भाजन,
निश्चय ही इस ललित कथा को समझ सकेगा मेरा मन।

बने रहो तुम सुदृढ़ प्रजा के मन-रंजन-उपकरणों में,
सहधर्मिणी तुम्हारी हूँ मैं गति है केवल चरणों में।
हो मेरे निर्वासन से सम्पूर्ण प्रजाजन को संतोष,
अनुपम व्रत रघुपति राघव का हो सम्पूर्ण भाँति निर्दोष।

हुई पवन की मंथर गति सतवंती का क्रन्दन सुनकर,
सरिता सर अवनी अम्बर युत निखिल निसर्ग हुआ कातर।
शमित हो गई सुरसरिता की गति उत्ताल तरंगों की,
बन्द हो गई कलित काकली वनके विविध विहंगों की।

नहीं प्रकम्पित हुआ एक फिर पत्ता तरु का कानन में,
शान्त हुई संचालन गति नर्तित वल्लरियों के तन में।
डाल डाल पर विहंग बैठकर कान लगाये सुनते थे,
ताल ताल पर मत्त प्राण से दुःखमय निर्भर बहते थे॥

मृगशिशु मुख में जननी के स्तन दाव रहगये अति अविचल,
सके न कर पय पान हो गये जड़ो भूत कातर निश्चल।
खड़े रह गये स्तब्ध हरिण मुख के तृण लेकर के मुख में,
उद्ग्रीव चकित शंकित अवाक् रह गये शोक-ध्वनि के दुःख में।

शावक सहित मयूर-मयूरी ताक रहे थे बिस्मित से,
छोड़ चपलता स्वभाविक निस्तब्ध रह गये चित्रित से।
करिणी-करभ करीन्द्र काठ से हुए भ्रमण करते-करते,
भूल गमन गंगा तट का मग में विरमे बढ़ते बढ़ते।

— o —

(द्वितीय सर्ग)

बाल्मीकि मुनीश – आश्रम राज्य में,
शान्ति का राजत्व ही सम्पूर्ण है।
दत्त पादप कर सुछाया सुखमयी,
निरत करतो कोष का परिपूर्ण है ॥

निष्कपट अविरल अयाचित कर सदा,
सघन छाया वृक्ष वृन्द अदाप से।
मुदित मन सानन्द करते दान हैं,
नित्य निज तन की तुला के माप से ॥

सघन पल्लव-कवच का कर आवरण,
तन सुरक्षित तरु अतीव उमंग में।
सजग सैनिक से सजा कर साज़ सब,
वीर से आते प्रकृति-रण-रंग में ॥

साधना वरसात की व्यायाम से,
पुष्ट करते तन निरंतर मगन मन।
जीत आतप अरि अमित आनन्द से,
छीन कर लाते सदा आलोक-धन ॥

त्राण करने के लिए साम्राज्य को,
शीत के अभियान दुखद अनूह में।
धूनियाँ जलती नहीं मानो अपितु,
ज्वलित कितने अनल-विशिष समूह में ?

देखकर अवसर पराजित प्रकृति भी,
पादपों को दान करती तोष है।
फूल फल कर रूप के उपहार से,
कर समर्पित समुद भरती कोष है।।

दीप्त अगणित रत्न तारों से भरे,
गर्भ में धारण किये नभ-सिंधु थे।
क्षीण सी करते घटज की कीर्ति को,
पल्लवों पर प्रति शिशिर के विन्दु थे।।

पादपों के आल-वाल भरे हुए,
थे तरंगित नीरनिधि से गर्व में।
अमित उडुगण चमचमाते रत्न से,
थे छिपाये चन्द्रमण्डल गर्भ में।।

सजल नयनों रघुपती राघव-प्रिया का,
यों अचानक ही प्रविष्ट हुआ रुदन।
लगा करने घन प्रकम्पित वेग से,
शाँति सुख को सदय देवी का सदन।।

दया शीला शाँति विचलित चित्त से,
संतरण कर करुण नीर अगाध में।
रोदिनी के पास जाने के लिए,
सद्यव्यस्ता परिवहन की साध में।।

मुनि-सुताएँ उटज से बाहर निकल,
उस समय थीं कार्य में रत हो गईं।
वात-त्रस्ता नवल वल्ली विटप के,
पर्यवेक्षण में सभी मिल खो गईं।।

ज़ा पड़ा नव एक रव सुविचित्र सा,
कार्य-निरत कुमारियों के कान में।
मन नियोजित चकित ध्वनि अनुगामिनी,
व्यस्त थीं उसकी करूण पहिचान में ।।

क्षुब्ध मन से सोचकर - अनुमानतीं,
है नहीं यह मंजु मृदुल कपोत स्वर ।
है नहीं यह कोकिला की काकली,
है न वीणा को मधुरझंकृत लहर ।।

है नहीं यह शंख का सुनिनाद भी,
मधुर मंजु मयूर-केका भी नहीं।
ललित ललना के करुण कल-कण्ठ से,
एक निर्झरिणी प्रवाहित हो रही ।।

बैठ कर सुकुमारियों के हृदय-रथ पर
शांति शुभ शीला गमन करने लगी ।
त्वरित गतिगामी यथा रथपर सजी,
वल्कलांञ्चल की ध्वजा उड़ने लगी ॥

देखकर रोदन तंरगित शाँति भी,
हो गई निज चित्त में चिंतित चकित ।
कर नहीं पाई तनिक अवहेलना,
पास जाना ही समझ कर के उचित ।।

मुनि तनूजाएँ पहुँच कर पास ही
एक अद्भुत दृश्य दर्शन कर रहीं।
एक अबला अति अनूप अपूर्व की
चक्षु अविरल अश्रु वर्षण कर रहीं ।।

ललित ललना चकित कोई सोचती,
है विलक्षण एक घटना यह नई।
सुन्दरी ऐसी अनूपम रूपसी,
विजन वन में मानवी सम्भव नहीं ।।

या महेन्द्र पुरी निवासिनि मंजुला,
सद्य शापित देवि यह गति पा गई।
भोगने को शाप दुखद सदेह ही,
गिर गगन से इस मही पर आ गई॥

या भ्रमण करती हुई आकाश में,
शोभिनी सुर-नगर-प्रिया महेन्द्र की।
स्खलित हो कर आ गई भूलोक में,
पीठ से गतिशील धवल गजेन्द्र की॥

सोचती कोई अमित आश्चर्य से,
हो न हो गंगा खड़ी मूरति मती।
अश्रु धारा के अजस्र निपात से,
हो डूबोती आन मानों बसुमतो॥

श्रवित होकर स्वर्ग से संसार में,
करुण करुणा या कि विचलित हो रहो।
देख कर परदुःख भीषण ताप से,
हिमकणों को भाँति विगलित हो रहो॥

या कि फिर घनकुन्तला संग मेघ के,
तारिका ही गगन से गिरकर मही।
त्वरित तीव्र निपात के कारण मनो
धार बन करके धरा ऊपर वही॥

रोदिनी की रूदन ध्वनि करुणा मयी,
यदि कहीं होती हृदय विस्मय प्रदा।
यह कहा जाता कि घन के साथ में,
आ गई चिरसंगिनी यह शत ह्लदा॥

मंजु पिक के मनहरण स्वर से मुखर
शिशिर वर्षिणि चन्द्रिका सुमधुर कहाँ।
झिल्लियों की झाँझ से झकझोरती,
ग्रीष्म का अभितप्त ताप प्रखर कहाँ॥

हाथ में होतो कहीं वीणा मृदुल,
तो यही अनुमानतीं. है भारती।
कर रही क्रन्दन विरह में विष्णु के,
व्यथित हृदया पूर्ण आरत आरती।।

कर विभिन्न विचार मुनि सुकुमारियाँ,
घेर करके जानकी को पास से।
पर न साहस कर सकीं वे स्वल्प भी,
बोध करने को उसे आश्वास से।।

घन घटाओं से घिरी वरसात में,
महानदी प्रवाह पूरित पंक जल।
स्वच्छ करने के लिए किस रूप में
कर सकेगी निर्मला निज को सफल।।

उप नदी सुतरंगिता मिल संग ज्यों.
प्रखर करती महा सरिता वेग को।
मुनि सुता – संगम बढ़ाने त्यों लगा,
भूमिजा के शोक के उद्वेग को।।

बिना कुछ पूछे सभी सु कुमारियाँ,
घेर सीता को अड़ी सी रह गईं।
जा ना पाईं एक पग उस ओर से.
प्रेम बेड़ो में जड़ी सी रह गईं।।

विकल होकर देखतीं सखियाँ सभी,
अश्रु पूरित श्रांत सीता के नयन।
क्षुब्ध अन्तरवेदना की वीचि से,
कर रही थो करुण सरिता का सृजन।।

अश्रु प्लावित मुनि सुताओं से घिरी,
परम शोभा पा रही सीता सती।
विकल प्राण विलखती थी क्षोभ से,
व्यथित हो कर शोक जल में डूबती।।

चक्रवाक प्रसूत जल के विन्दु से,
सद्य सिंचित जलज वन में डोलती।
या करुण रस पूर्ण आर्त्त निनाद से
क्षुब्ध हो कल राजहंसी बोलती।।

व्यथित अन्तर के अमित उत्ताप को,
एक आकुल सखि न सह पाई अहा!
आदि कवि के पास जा कर शीघ्र हो,
खेद पूरित दुखद वचनों में कहा।।

तात हे! इस विजन वन के छोर पर,
रूपसी नवनीत पुत्तलिका समा,।
करुण क्रन्दन कर रही आकर विपुल,
व्यथित प्राण विशीर्ण वातुलिका समा।।

कर रही अविराम सम्बोधन विकल,
मन लगा कर परम स्नेही कान्त में।
स्मरण करती सरस वत्सलता तथा,
पति गुणों को प्रेम से एकान्त में।।

सुभग सिन्दूरी लगा जो भाल पर,
ललित लगता देखने में बिन्दु है।
हो रहा प्रतिभात मुख अरविन्द के,
हेतु, मानो पूर्णिमा का इन्दु है।।

जुगल कर में परम शोभा पा रहीं,
चूडियाँ अति रुधिर रत्नों से जड़ी।
या पुलिन पर विशद उदधि-विषाद के,
चम चमाती रत्न राशि मनो पड़ी।।

कान्ति शतदल की लिए सुन्दर वदन,
रुचिर अंचल बीच शोभा पा रहा।
अर्धविकसित नयन-रंजन जलज में,
शुचि वराटक-सी ललित छवि छा रहा।।

क्षुब्ध उर की स्नेहधार अजस्र से.
नयन-वारि भिगो रहा परिधान है।
देवि अति अनुपम खड़ी या मानवी,
सहज ही होता नहीं कुछ ज्ञान है ॥

मौन हो सारी कथा सुनते हुए
नेत्र मुनिवर के निमीलित हो गये।
काय शिर ग्रीवा समेट सुयोग से
एक क्षण के हित समाधित हो गये ॥

फिर हुये मुनिवर खड़े बाहर निकल.
"चलो देखें" बस यही कहने लगे।
चकित मुनि-पीछे सकल हो कर विकल,
मुनि कुमार समूह में चलने लगे ॥

अति कुतूहल से गईं सब साथ में,
थीं उटज में जो वहाँ मुनि नन्दिनी।
जो बुलाने के लिए आई सखी
प्रेम से बन कर उसी की संगिनी ॥

चल पड़े हरिणी-हरिण सब साथ में,
और उनके संग शावक हो लिये।
मंजु मनहर मोर, वक पिक पुंज में,
वृक्ष से उड़ वृक्ष पर सब चल दिये ॥

पवन-सागर में यथा छोड़े हुए,
संतरित से काय रूपी पोत थे।
नयन-मन-रंजन ललित खंजन तथा,
सारिका शुक और कलित कपोत थे ॥

चल पड़ी अभियान के हित साज कर,
राजमहिषी शांति की वर-वाहिनी।
भूमिजा को दुख-शिला की ओर ज्यों,
बह चली हो घोर प्रखर प्रवाहिनी ॥

महानद का नाद करता घोर तम,
उग्र महाप्रवाह आ कर अग्र को।
मग्न कर देता प्रबल विद्रोह से,
मार्ग को उन सकल शिला समग्र को।।

किन्तु बोलो क्या शिला के खण्ड वे,
टल सकेंगे तीव्र प्रखर प्रवाह से ?
शिर विघूर्णित कांप कर गिर जाएगा,
लौट कर अवरोध पूरित राह से।।

भोगनी न पड़े कहीं वह ही दशा,
शाँति को, अभिनीत इस अभियान में।
लग रही मदमत्त सी लगती रहे,
वह स्वयं अपने अचल अभिमान में।।

दूर कुछ जा कर मिले मुनिराज तब,
मुदित बढ़कर जानकी के पास में।
और सब संगी खड़े थे घेर कर,
भूमितल पर डाल पर आकाश में।।

श्वेत-श्मश्रु, जटा कलाप सुदीप्त वपु,
भस्म भूषित सौम्य मूरति भासती।
वाल्मीकि महर्षि के सान्निध्य में,
राजती थी हेम-गौरी-सी सती।।

था दिखाई दे रहा प्रत्यक्ष यों,
हिम भरे हिमगिरि खड़े थे चाव से।
पास हो बैठी हुई मानो उमा,
मौन तप में लीन निश्चल भाव से।।

आगमन से शुभ महा मुनिराज के,
हो गया सिय शोक सकल निवर्त था।
थम गया प्राबल्य से जो चित्त में,
भ्रमित चिन्ता-चक्र का आवर्त्त था।।

भूमिजा से प्रेम से मुनि ने कहा,
अरी वत्से ! मैं सभी कुछ जान पाया।
विरह सागर में तुम्हारे आज फिर,
यह अचानक ही विपद का ज्वार आया।।

सहज गति स्रोतस्विनी बहती हुई,
शांत हो सागर मिलन की आस में।
प्रस्तरों गिरि संकटों को लांघती,
बन विरोधी जो कि आता पास में॥

भूल जाती सति-पति के मिलन से,
रह न पाता विगत किंचित क्लेश भी।
एक हो जाते उभय जीवन सदा,
भेद रह जाता नहीं कुछ लेश भी।।

दव वश उठता कभी जब मध्य में;
ऊर्ध्वगामी उर्ध्व तल को भेद कर।
बालुका का स्तूप बढ़ता वेग से,
सरित सागर के हृदय को छेद कर।।

सरित मर पानी नहीं पर हो विकल,
संचयन करके स्व-जीवन भार को।
कर प्रसारण सहज सरल प्रवाह का,
सौंप देती हृदय हृद आकार को।।

भव्य जीवन में तुम्हारे घट रही,
आज कुछ ऐसी दशा दुःख रूपिणी।
व्यर्थ में चिन्ता न करना लेश भी,
क्योंकि यह है घोर चिता-स्वरूपिणी।।

श्वसुर तेरे सुहृद थे मेरे परम,
मानता हूं जनक स्नेहागार को।
त्याग कर संकोच आश्रम में रहो,
मान करके तिक्त इस संसार को।।

मान कर मन से इसे निज गेह हो,
हृदय में लाना इतर कुछ भाव ना।
जन्म जो होगा सुखद संतान का,
तुम न किंचित उस विषय में भावना॥

सुन सरल वर-वचन ये मुनिराज के,
जानकी नत चरणतल में हो गई।
कल कपोलों से ढुलक दृगविन्दु की,
अवलि, उठ अंचल बसन में खो गई !।

हो प्रसविनी वीर की तुम जानकी,
वरद कर शुभ दे रहा आशीष था।
अनवरत आश्वसित करता था मधुर,
जो कि मुनि की मंडली का ईश था॥

प्रेम से कहने लगे मुनिवर पुन:,
हे सुपुत्रि ! विलम्ब मत किंचित करो।
वास कर सुकुमारियों के संग में,
उटज को आनन्द से रंजित करो॥

वस्तुएँ जो हैं उठालो तुम उन्हें
बालिकाओ शीघ्र ही अति ध्यान से।
महामहिम महर्षि के आदेश का,
लगा होने पूर्ण पालन मान से॥

झट झपट कोई किसी से छीन कर,
पेटियाँ अति चाह ले चलने लगीं।
घेर कर सादर सती को साथ ले,
सुभग सब सुकुमारियाँ बढ़ने लगीं॥

पादुका से बार बार प्रहारते,
चल पड़े दुर्गति नियति के शीश पर।
राम-हिय की प्रेम प्रतिमा सामने,
मन्द गति से शान्त हो कर मुनि प्रवर॥

हो रहे प्रतिभात दिनकर सारथी,
ऋषि वसन काषाय वपु धारण किये।
और पीछे थी दिखाई दे रही,
जानकी रविरश्मि की आभा लिये॥

वह दिवाकर की किरण डूबी हुई,
थी वहीं दुःख के महार्णव अर्ण में।
और दिनकर सारथी भी राजते,
थे वहाँ अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण में॥

यह सकल संवाद जो था हो रहा,
मुनि महा सुयती सती वर वाम से।
सुन रहे ये सब विहँग बैठे हुए,
मौनधारी सरस रव उपराम से॥

अनुसरण करती सिया मुनिराज का,
देख आश्रम-ओर अभिमुख शुभ गमन।
मधुर कलरव सकल खग करने लगे,
मोद से भरकर अमित आनन्द मन॥

बज उठा यह राजरानी शान्ति का,
तुमुल ध्वनि से रण-विजय का घोष था।
मनहरण मृग-शावकों के नृत्य से,
प्रकट सा होता परम संतोष था॥

नव अतिथि के सुखद आनन मंजु को,
स्नेह-सागर के सरिस से लेखते।
बार बार सतृष्ण नयनों से उसे,
वे सभी खग और मृग थे देखते॥

शान्ति पुर को विजित सी करती हुई,
विजय लक्ष्मी रूप में विजय-श्रिया।
स्वयं शान्त अशान्त-सागर-उत्थिता,
जा रही थी राम की रमणी प्रिया॥

चन्द्र चर्चित पूँछ को धीरे उठा.
छोर दोनों विथिका के छा रहे।
मार्ग के युग पार्श्व को सज्जित किये
साथ मे शत-शत शिखी गण जा रहे ॥

ललित निज निज शुण्ड में मनहर कमल,
थे सभी सुकुमार करि-शावक लिए।
संग में दलबल अतीव उमंग से,
ठेल-पेल मचा मचा कर चल दिये ॥

कुसुम गुच्छ सजा-सजा पल्लव नये,
पादपों में झूल शोभा पा रहे।
उड़ रहे बक, पंक्ति में आवद्ध हो.
सित पताका से वहाँ फहरा रहे ॥

कलित कलरव कोकिला कुल-कण्ठ का
मधुर मंगल गीत रंजित हो रहा।
ललित अलिकुल का सरस गुंजन मुखर,
शंख का जयनाद व्यंजित हो रहा ॥

बार बार उड़ान भर कर डाल मे,
डाल पर जा मत्त सुख सरसा रहे।
सारिका शुक मुक्त मुष्टि समूह में.
मार्ग में अगणित कुसुम बरसा रहे ॥

वन्दना में आरती-सी जल उठी.
सान्ध्य नभ गोधूलि वाली तारिका।
राजती ऋषि के उटज में आप ही,
शोभनोया राम-लोचन-तारिका ॥

पेटियाँ सब रख सुपर्ण-कुटीर में,
मान से सुनकर महाऋषि का वचन।
एक कन्या ने वहीं आनन्द से,
धो दिया सीता सतो का शुभ वदन ॥

डालती थी जल कलश से बालिका,
अर्घ्य-पाद्य प्रदान करने के लिए।
छीन कर जल-पात्र उसके हाथ से,
जानकी ने स्व पद प्रक्षालन किए।।

परम कोमल पल्लवासन पर बिठा
मुनि कुमारी एक ने सम्मान कर;
रख दिये सादर सती के सामने,
पात्र पर्ण व मूल फल भर आन कर॥

नाम अनुकम्पा परम बृद्धा अहा!
गोद में उसने सती को ले लिया।
और उनके भव्य भाल, कपोल को,
कर कमल से स्वतः प्रक्षालित किया।।

स्वच्छ उज्ज्वल वारिधारा झर रही,
नेह परिपूरित ममत्व प्रपात की।
ढाल शीतल शाँत सी करती हुई,
वेदना अंतस सती के गात की॥

मुख कमल को बार बार निहारती,
मधुर कोमल वचन में धीरे कहा।
भाग्य वश मेरे स्वयं ही पास में,
तू यहाँ चलकर अरे आई अहा॥

अम्ब तू राजेश्वरी है राज की,
स्वर्ण मन्दिर तव सुरम्य निवास है।
पूर्ण कर तम से कनक के सौध को,
कर रही उज्ज्वल हमारा वास है।।

दिन गया है बीत सारा क्लेश में,
फिर किया होगा न कुछ आहार भी।
भूख से पीड़ित हुआ शिशु गर्भ में,
कर रहा होगा सुपाद प्रहार भी।।

अरी वत्से ! प्रेम से खा, प्रेम से,
मातृ-गृह में भी तुझे क्या लाज है ?
निर्निमेष निहारता है नेह से,
यह तुम्हारा सौम्य सखी समाज है ॥

बोल मीठे वचन, देकर हाथ में,
सुरस रस नारंगियों की कुछ कली ।
एक एक निकाल कर देने लगी,
पक्व कान्ति कपूर-सी कदली-फली ॥

भिन्न करके बीज तेंदू के तथा,
खण्ड खण्ड सुपक्व कटहल के किये ।
मधुर पिण्ड खजूर और रसाल भी,
रसभरे कुछ साथ में लाकर दिये ॥

बार-बार सुमधुर वचनों में सभी,
" अम्ब ! धीरे खाइये, " कहने लगीं ।
तोड़ मृदुल अनार दाने हाथ में,
पुंज-पुंज उठा उठा देने लगी ॥

बोल कर कुछ और दो कुछ और दो,
कन्दमूल अहार के अवशेष में ।
बेर दे करके सती को आठ दस,
नेह से उनको खिलाए शेष में ॥

मातु-ममता के मधुर आनन्द को,
थी न समझी वाल्य जीवन में जिसे ।
उस परम सुख की सरस अनुभूति ही,
हो रही थी आज मुनि वन में उसे ॥

कन्द-मूल फलादि भोजन शेष में,
जानकी ने मंजु मुख मार्जन किया ।
तापसी के नेह पूर्ण निदेश से,
बैठने को काष्ट का आसन लिया ॥

लायची लघु ललित दे दी आन कर,
मुनि-कुमारी ने सती के हाथ में।
मंजु मुख में सुमुखि ने रख ली उसे,
प्रेम से लेकर समादर साथ में॥

मुनि-कुमारी एक ने नीवार के,
आन करके, शुष्क कोमल नाल से।
सुभग अनुपम सुखमई शैय्या वहाँ,
साज दी मंजुल हरिण का छाल से॥

रह गईं सानन्द दो सखियाँ वहीं,
सौम्य शान्त विदेहजा के पास में।
और भी जो थीं वहाँ वे सब गईं,
द्रवित अन्तर साथ ले निज वास में॥

(तृतीय सर्ग)

लक्ष्मण जब जानकी को छोड़कर.
कूल में भागीरथी के चल दिये।
निर्मलाम्बर-तल ससागर धरणि में,
व्याप्त था अभितप्त ताप प्रखर लिये॥

अमर-पुर राघव वधू का निर्गमन,
देख लेगा तो बड़ी लज्जा घनी।
इसलिए ही क्या कहो दिन नाथ की,
यवनिका को शुभ्र यह सज्जा घनी॥

जानकरके सकल सविधि प्रदोष ने,
भानुकुल के दोष पूर्ण रहस्य को।
यवनिका सत्वर हटादी अवनी से
प्रकट करने के लिए उस दृश्य को॥

बोल सुन करके विपुल खग वृन्द के,
गगन प्रांगण में सितारे छा गये।
एक के पीछे अपर फिर और भी,
अनगिनत एकत्र हो कर आ गये॥

जन-रहित प्रांगण प्रशस्त प्रकाम में,
दिख रहे वे सूर्यवंशी राम थे।
मुख विषण्ण विषाद में बैठे हुए,
नयन एकाकी सजल अविराम थे।।

× × × × ×

सोचरहे अधिकार राज्य का,
महा दासता की छलना।
इस उन्नत पथ पर प्रजार्थ ही,
एक मात्र है श्रम करना।।

यही प्रजा जब झूठ कथा को,
शत-शत मिलकर खोलेगी।
झूठ जानकर भी तब उसको,
सच-सच जगती बोलेगी॥

प्रजाजनों के शान्ति-यज्ञ में,
नृप-सुख बलि होता है।
बद्ध धर्म निज स्वार्थ हेतु,
पग एक न चल सकता है।।

कहते हैं अभिषेक जिसे वह,
स्नान मात्र केवल है।
और कहें मक्षिका उड़ाना
चामर-दोलन फल है।।

कभी न पीड़ित होता सुर-उर,
सुख नैराश्य क्षुधा से।
सुर से भी इस हेतु बड़ा नृप,
सेवित कीर्ति-सुधा से॥

प्रजा-रक्त जल कणिकाओं से,
उच्चासन पाता है।
उनके ही मंगल हितार्थ,
नृप जलधर बन जाता है॥

महि के जल में वज्र नहीं,
केवल रहता जलधर में।
दण्ड प्रजा के हाथ नहीं,
रहता प्रचण्ड नृप-कर में॥

विद्युत अनल ज्वलित घन-उर
पर जल देने को बाध्य अहा!
करता नृप सुख त्याग प्रजा हित,
जाता परमाराध्य कहा॥

स्वर्ग नसेनी का उन्नत शिर,
नृप-पद महिमण्डल में।
लक्ष्यभ्रष्ट हो नष्ट नृपति,
गिरता गभीर भूतल में॥

सरल भाव राजत्व-रज्जु पर,
भार संतुलित देकर।
नट-सा हो बेधड़क घूमता,
दण्ड हाथ में लेकर॥

चल न सके रख पैर रज्जु पर,
वाद्यकार दे गाली।
कुछ दर्शक गण विहँस विहँस कर,
बजा उठें तब ताली॥

शिथिल करूँ यदि कार्य प्रिया-
मैथिली विरह के दुख से।
अधिक भर्त्सना सुननी होगी,
जन समाज के मुख से॥

जगती बोलेगी रघुकुल का,
राम विचार-कृपण है।
राजकाज के निरत त्याग का,
पत्नी ही कारण है।।

उत्तम वानप्रस्थ हमारे लिए,
अभी असमय पर।
मेरा कार्य ग्रहण करने को,
भरत न होगा तत्पर।।

नेह क्रोड़ में रह कर नित-नित,
देख देख घटता है।
अंक शून्य हो शून्य अंक पर,
दश गुण सा डटता है।।

स्थूल कलेबर अमर नहीं,
बस अमर अकेला मन है।
मन से है यदि साथ अटूटा,
वही गण्य सुख-धन है।।

सदा बाँध कर स्वर्णमुकुट,
रहता है कौन विभव में।
समय समय यश अपयश बनते,
प्रतिवादी इस भव में।।

स्वर्ग नर्क के गति निर्धारक,
होते स्वभाविक जन।
नहीं मानकर तथ्य खोजता,
सुख अनित्य चंचल मन।।

घर में नहीं नेह-हिय-सर में,
प्रिय कमलिनी खिली है।
छक मकरंद पान करता,
रहता मन भ्रमर छली है।।

नयन युगल क्यों विकल,
छोड़से रहते जल की धारा।
हो जाएगी मलिन कमलिनी,
सूखेगा सर सारा॥

अरे वक्ष! तू पत्थर बनकर,
रोक नेत्र-जल-नाली॥
अरी श्वास! धीरे चल,
कम्पित हो न प्राण-शंखाली॥

समाचार जीवन-संगिनि के,
लक्ष्मण आन कहेगा।
श्रवण युगल तुम चंचल मत हो,
सुन कर दुःख बहेगा॥

अरी देह! प्रस्वेद सुखाने,
अंग-सुरभि से भरकर।
ताप-नाशिनी कमल-वासिनी,
वायु आ रही सर सर॥

एक बात मैं कहूँ सभी-
मिल जाओ मन के संग में।
हृदय-सरोवर में चल विलसो,
चिर दिन तक रस-रंग में॥

नव सरोजिनी प्राण संगिनी,
मेरी खिली वहाँ पर।
चिर तेजस्वी स्मरण भास्कर,
छिपता नहीं जहाँ पर॥

खाया प्रजा वित्त है तूने,
रसने! यहाँ न रहना।
जिसके धन से तू परिपालित,
उसको जैसी कहना॥

हे उडगण तुम नहीं वद्ध हो,
चन्द्र - प्रेम - कारा में ।
भ्रमित विवेकी विधि-विधान से,
सदा चक्र तारा में ॥

प्रिय वियोग-वेदना दुःसह को,
रहते उर में सेते ।
दुख भूल कर्मानुसार,
द्युति - दान जगत को देते ॥

वाल्मीकि आश्रम में देना,
तुम यह शिक्षा जाकर ।
रोती उर चन्द्रिका जहाँ पर,
हमें ध्यान में पाकर ॥

चकवों का निशीथ - क्रन्दन,
सुन आकुल हो जाएगी ।
करुणामई ज्ञानहीना क्या,
प्राण बचा पाएगी ?

उदाहरण में तुम रखना,
सर मध्य कुमुदिनी वन को ।
उदित न होने पर भी शशि के,
रखती निज जीवन को ॥

[illegible] समस्या विषम मिलन की,
तुम यह भी बतलाना ।
[illegible] मनोरम उर - संगम है,
[illegible] [illegible] समझाना ॥

इससे सारस - नयनी फिर कुछ
और न सोच सकेगी ।
देखे भाव हमारे कहना,
साखी यही रहेगी ॥

कह न सकेगो अनुपयुक्त,
संन्देश तुम्हारा पाकर ॥
क्योंकि हमारा आत्म-स्रोत है,
रुका गर्भ में जाकर ॥

राघव - उर विशाल है, कलुषित
-कूट-दृष्टि से गम्य नहीं।
रे तारक दल ! वृथा निरीक्षण,
तेरा अनुचित, क्षम्य नहीं ॥

गुणियों के सद्गुण न ज़ानकर,
निपुण दोष - दर्शन में ॥
विधि विडम्बना आत्म तोष की,
बैठ उच्च आसन में ॥

देख राम का दोष मिलेगा-
तोष सोचते उड़गण ।
पर विलोक उच्चता हृदय की,
नत शिर था नीचा मन ॥

प्रभु दुःख-दर्शन- विमुख खेद से,
खण्डित हृदय निशाकर ।
उदित हो गये विभावरी में
छोड़ क्षीर रत्नाकर ।।

बोला चतुर चकोर चक्रबाकों -
के प्रति उपहास दिखा।
चिन्ता मत कर भाल तुम्हारे
विधि ने है उपहास लिखा

कहे कौन ? विधि ने उसके मुख
अमृत बूँदें डालीं।
नियम यही पर-विपति देखकर
घनिक मारते ताली ॥

मणिमय दीप्त अवध-आसन तज
होकर आज विरहिणी।
भोग रहो सुख वहीं दूर से
रामचन्द्र को गृहिणी ।।

पूर्व सुपरिचित पर्णकुटी में
बैठ अजिन-आसन में।
जीवन की पिछली बातों को
सोचा करती मन में।।

मधुमय सम्भाषण स्वामी का
अधिक प्रेम से जर जर।
कर प्रवेश उर वाद्य यंत्र में
छेड़ रहा निर्मल स्वर ॥

मरकत-द्युति प्रभु-बाहु भय हरण
भरी सरल सुन्दरता।
सिर समीप ही सदा ध्यान में
दिखता जगमग करता ॥

नींद छोड़ कर प्रहरी लक्ष्मण
रहे सदा से संगी।
दिखे पास ही स्वर्ण मुकुर में
वैसे बने निषंगी ।।

उन स्वामी देवर ने छोड़ा
याद जभी यह आती।
हिम से मलिन नलिन नयनों से
अविरल नीर बहाती ।।

विक्षत हो कर ताल वृक्ष
रसधार बहाता जैसे।
नीरव निश्चल क्षोभ घात से
सती दशा थी वैसे ।।

इसी भाँति प्रिय-भाव प्रिया
प्रिय भाव सोचती मन में।
धीरज-असि से काट रही-
निशि बैठ दुःख आसन में॥

श्रम से शिर से समुद्भूत
प्रस्वेद बह रहा अविरल।
चक्षु-पद्म से बह-बह कर
प्लावित करता गण्डस्थल॥

रोई निशा उलूक वेश में
क्षीण-प्राण हो कर के॥
गगन रक्त प्लावित कर पायी
त्राण पलायन कर के॥

अहंकार विक्रय कर तारे
प्रिय प्रियतमा चरण में।
झड़ अवनी पर पुष्प वेश में
आए वहीं शरण में॥

शरणागत वत्सल ने उनका
छल विहीन रख मान लिया।
युग युग तक तुम चढ़ो शीश पर
यह अनुपम वरदान दिया॥

—०—

(चतुर्थ सर्ग)

शुभ वेला ऊषा आई
भूषा राजीव सुहाई
तृषा दर्शन की छाई,
आज उर में बड़ो ।

कर पल्लव नीहार
मुक्ता लाई उपहार
सती भवन के द्वार
आन – प्रांगण खड़ी ॥

कह उठी कोकिल – काकलो सु – रसा,
दरशन देदो सतो विगत निशा ।। १ ।।
साज गैरिक वसन
कान्ति राजित सुमन
शान्त सरल वदन
करें विश्वसित मन ।

कोई योगिनो सुभाषो
धैर्य दायी सुख राशी

दुःख दारूण विनाशी
प्रिय मृदुल वचन ।।
दान है। जीवन नव विराम से,
भूमि पर उतर पड़ी कि स्वर्ग धाम से ।। २ ।।

गीत पवन सुनाए
बीन भ्रमर बजाए
नृत्य सुरभि दिखाए
ऊषा के निदेश से ।
बन के महोक भाट
करता था स्तव--पाठ
पट्ट मागध के ठाट
था कलिंग वेश से ।
बोल उठे ललित मधुर सहसा,
उठो सती राजरानी विगत निशा ।। ३ ।।

मुनि मुख वेद ध्वनि
भरि कानन अवनि
भेद कर नभ पुनि
उठा उच्च ऊँकार ।
स्वर्ग लोक को दे तृप्ति
नाग लोक को दे गति
मानो पूरति संसृति
वाणी वीणा झंकार ।।
धीरे धीरे वन में प्रसारित प्रभा,
मानो मंत्र बल से प्रभावित विभा ।। ४ ।।

ब्रह्मचर्य व्रतस्विनी
अनुकम्पा तपस्विनी
देख सीता यशस्विनी
बोली गंभीर वचन,

कलिंग--एक पक्षी विशेष

उठो प्रिय वैदेही
उषा सुकुमार देही
आई दरश सनेही
करो तोष सम्पादन ॥
तमसा निहारती है बाट हे सिये।
एक बार अंक सुख पाने के लिये ॥ ५ ॥

ओस अम्बुज हृदय
मध्य तरणि उदय
वीर राम सहृदय
मानो अवध पती ॥
शोक जर्जरित चित-
पट चित्रित विचित्र
त्याग आसन पवित्र
उठी जानकी सती ॥
झुक अनुकम्पा के चरण छूलिए,
सविनय ऊषा पद-बंदन किए ॥ ६ ॥

बोली वचन सुभाषी
घन— तिमिर- विनाशी
रवि— आगम प्रकाशी
तुम संसरण को।
तब मृदुल चरण
कृत ज्योति आहरण
दृढ आशा ले शरण
जा रही वरण को ॥
रसिके सुरभि शुभ्र रस-राज की,
मंगल कारिणी बनो रघुराज की ॥ ७ ॥

रात्रि शेष के समय
धात्री आश्रम सदय

स्वच्छ तमसा–हृदय

शुभ पवित्र धारा।

पुष्प आँगन विछाय
नीर सुरभि सिंचाय
दीप मंगल जलाय

शुक्र प्रभात तारा॥

मीन नयनों को बार बार फेरती,
सीता शुभागमन की बाट हेरती॥ ८ ॥

कुटी मे मुनि कुमारी
समादर बाढ कारी
धन्य जगत मंझारी

सती रत्न साथ में।

आई बाहर निकल
अनुकम्पा सह दल
हेतु मज्जन सकल

सरिता के पाथ में॥

तमसा ने गोद ले श्री–अंग परसे,
प्रेम से आलिंगित तरंग–कर से॥ ९ ॥

बोली मधुर सुधा–सी
तोष–दानी सुख–राशी
कभी उर न विश्वाशी

देवि दर्शन की।

करोगी अंक–विहार
राज्य–श्री हृदय–हार
तज भोग सुख–भार

निज प्यास मन की॥

धन्य भाग मेरे सब बिश्व कहेगा,
केवल तुम्हारे हेतु नाम रहेगा॥ १० ॥

घूमती विजन धँस
गर्त जाल में न फँस
लाँघ बाधाएँ विहँस
स्वच्छ जीवन लिए।

तम को न दुःख जान
सुख प्रभा को न मान
दूर पथ गतिमान
नत वदन किए॥
करती रही मैं निज जीवन सफल,
जल देके तुष्ट किए तीर-वासी-दल॥ ११ ॥

मंदाकिनी गोदावरी
मेरी जैसी गुणागरी
हो गई है उजागिरी
पा के उच्च गौरव।
पाथ पद चिह्न तव
शुभ अक्षय विभव
सुर-पद-प्रद नव
शुचि अंग सौरभ॥
बस यही कामना थी उर में सदा,
जिसके अभाव से थी हेय सर्वदा॥ १२ ॥

किए थे पवित्र कर्म
तुम्हे ले के आया धर्म
सु-समय मम मर्म-
वदेना को जानकर।
पाके दुर्लभ सम्पत्ति
साधना में होगी तृप्ति
नित्य आत्म अभिव्यक्ति
तुम्हे गोदआन कर॥

शुचि-अंग सौरभ-सुवास तुम्हारी,
जीवन-कलुषता हरेगी हमारी ॥ १३ ॥

मेरे अंक विहरित
हंस सारस त्वरित
कोक-युग्म संचरित
युग पंक्ति बक-गन ।

तेरा पावन शरीर
नित्य धौत मम नीर
पीके रहें तट-तीर
मेरे पास चिर दिन ॥

कलनाद मिस तेरा यश गायेंगे,
मेरे कर्ण सुन नित्य तृप्ति पाएगे ॥१४॥
पतिव्रता अंग लागी
होने पावन सुभागी
होके सुमन विरागी
लता पुंज वास में ।

कूद दूर किसी छोर
डूब उछल बहोर
दौड़ घूमे चहुँ ओर
आके तेरे पास में ॥

स्नान समय जलमें न अवहेलना,
पैर से न उन्हें दयामयि ठेलना ॥ १५ ॥
तेरे पावन चरण
मेरे तट विचरण
से ही करें वितरण
कान्ति अक्षय प्रदा ।

वन-तरु वर राजि
जव दीप्ति से विराजि

अमरत्व पद साजि
सुख शान्ति शुभदा ॥
जव किसलय शुचि श्यामल पटल,
रुचिर रहेंगे चिर दिन निर्मल ॥ १६ ॥

स्वच्छ नारि केल-नीर-
सम मधु तेरा नीर
नीर नहीं मातु-क्षीर
सीता कहने लगी ।

गिरि-स्तन से निकल
मृथमाणी-सुता वल
बन सुधा सी तरल
धार बहने लगी ॥

ओहो! तूतो मेरी माँ है इस देश में
दुःख क्षीण मना तमसा के देश में ॥ १७ ॥

क्षत विक्षत है पृष्ट
उर पार से भी दृष्ट
फिर भी सुता को तुष्ट
कर लेने के लिए ।
स्नेह नयनो को खोल
चाटु रचना अमोल
बोल मधु-प्रीति-बोल
अंक लेने के लिए ॥
धन्य धन्य माता तेरा पावन हृदय
मेरे दुःख आतप के हेतु रेत-मय ॥ १८ ॥
वन चिर निर्वासिता
लोक -लोचन -लांछिता
राम राज्य की जो सीता
तेरी दया-फल से ।

समरथ है चरित्र
कर सकती पवित्र
जड़ जंगम सर्वत्र
पातिव्रत्य बल से ।।

माता ही समझती सुता की वेदना
उसके लिए कुरूपी चन्द्रवदना ।। १९ ।।

तेरे तट चिर वास-
में है निश्चित सुपास
बस मेरी दृढ़ आस
शान्तिमय चरणों में ।

शून्य जिसका संसार
माँ की गोद का ही प्यार
बस आदर आगार
इस संसरण में ।।

रत्न गर्भा है शुभ माता जिसकी,
अन्य स्थान खोजने की चाह किसको ।। २० ।।

तटिनी का शुचि जल
शुभ शीतल विमल
जैसा स्वभाव सरल
मुनि बालिकाओं का ।

प्रिय तमसा अनूप
प्रतिबिम्ब छल रूप
धर सत्वर स्वरूप
ऋषि पालिकाओं का ।।

उन्हें भेंटने को ही साकार हो गई,
आदर से मिल तदाकार हो गई ।। २१ ।।

नित्य सीता-संग वास
देखने की अभिलाष

पाके शुभ अवकाश
इस सदुपाय से।
हो के बहु नेत्र वती
बहु उर बहु मती
प्राप्त कर बुद्धि मती
सो विपुल काय से।।
सम गुण धर्म साथ साथ आगया,
बहु गुण होके मन तोष पागया ।। २२ ।।

सब कर निमज्जन
लौट पड़ी सु-वदन
कर विनत नमन
मुनि के चरण में।
देके आशीर्वचन
बोले मुनि तपोधन
करो ज्ञान अर्जन
साधना के क्षण में ।।
बोले समादर सुन राम-रमणी,
अप्रमाद से तू बन वीर जननी ।। २३ ।।

नन्दिनी नन्दन वन
सम कर सु यतन
आश्रम विटप गन
स्नेह श्रम से।
सुत दुर्लभ जगत
अनुभूति उर गत
होगी स्वभाव सम्मत
तुम्हें इस क्रय से,
अनुकम्पा नियत रहेगी शुभदा,
सकल अभाव तेरे मेटती सदा ।। २४ ।।

मुनि आज्ञा सिर धारि
चल पडी सुकुमारि
कर कंजन सँवारि
सब कलश लिए।
सखी स्फटिक समाज
सीता कान्ति दिव्य साज
रही हीरक सी राज
शुचि प्रतिभा लिए ॥
प्रस्थित हुईं वे सब उपवन को,
बढ़ गई शोभा पाके उस धन को ॥ २५ ॥

बन लक्ष्मी उदार
देख सीता निज द्वार
उर उत्थित अपार
रवि की किरण में।
पल्लवाधर हसन
मंजु मधूक दसन
हुई सादर मगन
चित्त के हरण में ॥
रंग शाल्मली ने अर्घ्य अर्पित किया,
दूर्वा दल विन्दुओं ने पाद्य दे दिया ॥ २६ ॥

थल- कमल- आसन
देके प्रीति सम्भाषण
कर सारिका भाषण-
के बहाने मधु से।
सर- शरद- सुजल-
में खिला नव कमल
अलि स्वन में चपल
कल हंस वधू से ॥

बोली तेरे अरुण पदों में सजनी,
बीत गई मेरी सब खेद रजनी ॥ २७ ॥

तुझे मैंने भाग्य वश
नभ-सुमन सदृश
पाके असीम हरष
उल्लसित मन में।
चित्रकूट उपत्यका
सिद्ध सेवित दण्डका
पारावार पार लंका-
के अशोक वन में॥
आगे रख तुझे ही आदर्श-महिमा,
चौदह वर्ष गढ़ी प्रीति प्रतिमा ॥ २८ ॥

कर पुष्पक सनाथ
जब लौटी नभ पाथ
तब लेके पुष्प हाथ
मृग दृष्टि वरणी।
ऊर्ध्व देख सविषाद
तुझे केकी कलनाद-
व्याज करती थी याद
अति दीर्घ सरणी॥
स्मरण सहचरी का कर मन में,
आज सखि आई तू अधिक दिन में॥ २९ ॥

दीर्घ विरह अशेष
सखि दुस्सह विशेष
सोच तपस्विनी वेश
मैंने धारण किया।
तेरे अन्तर आदर्श
मेरे विम्बित विमर्श

तुझे सरस सहर्ष
कर वरण लिया ।।
धन्यवाद करलो ग्रहण हे सिये,
श्रद्धा से हमारी रुचि-पूर्ति के लिए ।। ३० ।।

मिलता जब सुसंग
स्वभाव चिर अभंग
रहे जैसे नील रंग
रहता गगन में ।
साधु-संग मन-अर्थ
कभी होता नहीं व्यर्थ
तभी मैं हुई समर्थ
तेरे दरशन में ।।
भाग्य में लिखा था यह लाभ मुझको,
हुई भाग्यवती सखि । पाके तुझको ।। ३१ ।।

सीता- हृदय- गहन
दाह- विरह- दहन
वन- श्री कृत शमन
सुमन हरण में ।
हुआ उदित नवल
मानो जलद पटल
उर अन्तर विमल
तभी उस क्षण में ।।
कहने लगी ये श्री जनक नन्दिनी
"आजीवन हुई तेरी कारा-वंन्दिनी" ।। ३२ ।।

—o—o—o—

(पंचम सर्ग)

राज–उद्यान–शोभा जलधि की लहर,
ले कुसुम-फेन का ढेर निज शीश पर।
जो चरण-फूल नक्ष-रत्न से युक्त था,
ज्योति उपयुक्त सेवा समायुक्त था।।
है उसी का सुभग आगमन––
देख कर उल्लसित साधु उद्यान के।
चारु लतिका, विटप मृदु सुमन ।। १ ।।

एक तो यह बसन्ती मधुर काल है,
बाल रवि पर सुस्वर्णिम किरण जाल है।
हैं प्रसारित शिशिर विन्दु सब पर्ण में,
कर रहे हैं सुलीला विविध वर्ण में।।
ओस के बूँद ऊपर पड़े––
नील मोती भरे हीर माणिक, पटल
जा रहे थे विचित्रित गढ़े ।। २ ।।

सूर्य आभा मणी से सुमण्डित सदा
दश वदन दर्प दलते रहे सर्वदा।
गर्व की ज्योति दश-शीश की कर हरण
उस सती रत्न के ही सुपावन चरण,
आज वे ही चरण आ रहे--
मुनि वाटिका बीच, मणि गर्व की राशि
मानो हैं बिखरा रहे ॥ ३ ॥

है सती का हृदय श्याम श्रीराम मय,
सब बिटप गण चुरा ले गये वह हृदय।
हो गये थे क्रमिक गाढ़ श्यामल वरण,
है सती के लिए एक पति की शरण।
अंग की कान्ति आभा मयी--
खिच कर कुसुम से कुसुम पर बढ़ी
अन्त में जा वहीं रह गयीं ॥ ४ ॥

केश की कान्ति ही भ्रमर ने ली मुदा
चम्पकों की बनी अंग छवि सम्पदा।
मंजु मन्दार ने ली अधर की रुची,
और सबको मिली जो जहाँ थी रुची ॥
सब हुए कान्तिमय निर्मली--
स्वर्ग कमला यथा आ गई मर्त्य में,
कर रही बाग लीला-स्थली ॥ ५ ॥

थी सती की सुगम छवि सुधा के सदृश,
अमृतोपम हुआ फूल में मधु सरस;
मंजुता और मृदुता उसी रूप में,
जा बसी पुष्प-कुल अंग अनुरूप में॥
वन सती पुण्य तप-राशिनी--
जीवन अकेला प्रभाहीन तन
हो गई थी विजन-वासिनी ॥ ६ ॥

साधवी के सुन्सत्कार उद्दाम में,
लग गई मकड़ियां, रात काग में।
चारु चन्द्रातपों को सजाने लगी,
हेम के पुष्प उनमें लगाने लगीं॥
पक्व नारंगियाँ राजतीं—
स्वर्ण-गोलक सदृश थीं वहाँ सैकड़ों
झूल झुक झूम कर सांजतीं ॥ ७ ॥

मंजु रम्भा बहुत सी खड़ी साथ में,
पंक्ति पल्लव-पताका लिए हाथ में।
चारु मुचकुन्द मनहर निम्राली बकुल
कुन्द मृदु माधवी वल्लरी-कुल विपुल
फूल ले ताकते थे सभी—
रात रानी थी खड़ी पास में,
पुष्प सज्जित सुकेशी तभी ॥ ८ ॥

मंजु सखियाँ लिए संग प्रिय प्रान की,
पास उनके वहां आगई जानकी,
अनगिनत थे सुमन शुभ सती शीश पर
मृदु पवन से प्रफुल्लित रहे थे बिखर
चूमते शीश को थे कई—
दावते हाथ थे कुछ मिलन में लगे
पाद वन्दन निरत थे कोई ॥ ९ ॥

पैर के रंग को चाटने को चढ़ीं
जीभ कितनी सुभग गुड़हलों की बढ़ीं?
चूमने ज्योति-मोती सु-नख आस में,
खोल दाडिम बदन रह गया पास में
आश-कारुण्य - ऋण का वरण—
हो गया पीन चम्पा हरित वर्ण था
राम का रूप कर अनुसरण ॥ १० ॥

अत्र सर्वत्र थी चाँदनी अति मृदुल,
मनहरण कर रहे बाल तरु थे सकल।
चारदीवार पर सिर उठा झाँकते,
थे सती को तृषातुर नयन ताकते,
उठ सके शीश जिनके नहीं--
बाड़ के छेद से झाँकते रह गये
व्यग्र हो देखने को वहीं ॥ ११ ॥

फूलचुसनी सु-छाँची विटप डाल पर,
बैठ निरखें सती को नयन डाल कर
कर रहीं जब कभी थी मधुर काकली,
मोद से बीच में पूँछ हिलती भली॥
भर दिया जल सती ने तभी
बैठ कर आल-बालों निकट सोचतीं
नीर निर्भय पियेंगे सभी ॥ १२ ॥

एक मकड़ा अचानक चरण पर गिरा,
गिर उठा और तरु ओर को फिर फिरा।
वह फुदक कर चपल वृक्ष से वृक्ष पर
था दिखाता कुशलता चतुर कारगर॥
भानु बनकर चितेरा यहाँ--
सूक्ष्म थे जो निकर-सूत्र के सोहते
रंग भरता विविध था वहाँ ॥ १३ ॥

सब विटप गण सहज भाव थे श्याम दल,
ज्योति मरकत लिए ठिठिरणी पक्षी दल।
ऊपरी डालियों पर विहरते हुए,
निज चपल चंचु घिस स्वच्छ करते हुए॥
दिख रहे थे मनोहर वरण--
श्याम जलनिधि लहर में सुलुंठित भली,
दिव्य जैसे दिवाकर किरण ॥ १४ ॥

फूल चुसनी और छाँची – पक्षी विशेष

प्रेम आभा भरा राम का ही हृदय,
राज सिंहासनासीन बन हो अथय।
क्या वही आ गया दौड़ उद्यान में ?
साध्वी-यातना नाश के ध्यान में ?
ज्योति वह नेत्र सुफला सही—
जानकी के हृदय में सदृश स्वाति जल
प्रेम मुक्ता सृजन कर रही ॥ १५ ॥

बन कहीं पर लगा कटहलों का सघन,
था कहीं चूमता आम्र-कानन-गगन।
आम की छाँह में व्योम यों दिख रहा,
मंजु मानो सरोवर वहाँ भर रहा॥
पुञ्ज तरु-स्कन्ध शत शत बढ़े—
लग रहा था कि होकर सभी एकमत,
जा रहे जंगलों को गढ़े ॥ १६ ॥

शान्ति-सर के मनुज-शून्य उपकूल पर,
आसरा ले चुके क्या तपस्वी-निकर ?
विघ्न गुरुभार ढोते हुए शीश पर,
रह गये थे अचल शान्त गम्भीरतर॥
सत्य मानो इधर दृग किये—
जानकी पर पडे शीत आतपजनित
ताप को नाशने के लिए ॥ १७ ॥

ये प्रियंगु मढ़ा इंगुदी का विजन
क्या रहा है सजा सौम्य श्यामल सदन ?
बन गई आज श्यामा नवीना वधू
ढालती है मधुर काकली का मधू॥
श्यामता से पुरी थी रची—
पूजने को सती इन्द्र आदेश से
आ बुलाती यथा हो शची ॥ १८ ॥

नील चिकने सभी पत्र उज्ज्वल सुघर,
युक्त पुन्नाग-कानन अधिक श्यामतर,
छोड़ उत्कल यहाँ आ गये उड़ अभी
दे रहे मोद मन का सती को सभी ॥
क्या अचल नील का रूप धर—

प्राप्त करने यथा आ गये राम ही
मैथिली-प्रीति-सागर-लहर ॥ १६ ॥

साथ लेकर सती संगिनी मंण्ड़ली
चूमने हेतु उद्यान आई चली,
आर्यावर्त उर में यथा सुरसरी,
आरही हो चली वृन्द ले सहचरी ॥
हो गया था अलंकृत सुपथ—

मुक्त उपहास कर युवति गंधर्व की
मंजु क्रीड़ा स्थली चैत्र रथ ॥ २० ॥

सामूहिक कर वहन नीर तमसा विमल,
भर रही थी वहाँ पूर्ण थलहे सकल,
स्वर्ग की सुन्दरी बालिका सी मगन,
सुरसरी नीर से सींचती देव-बन ॥
या कि कादम्बिनी सिन्धु से—

नीर ले भर रही थी धरा का हृदय
ढ़ाल मानो सलिल विन्दु से ॥ २१ ॥

वास अंचल कमर में लपेटे हुए,
चाल गतिपूर्ण चंचल समेटे हुए
शुष्क-केशी-शिरों पर कलश दुलरहे
स्वेद के विन्दु थे भाल पर ढलरहे ॥
हाथ से पोंछ लेती कभी—

धीर-गति-गामिनी राजकी नंदिनी
को परखतीं हुई फिर सभी ॥ २२ ॥

पूज्य वृद्धनुकम्पा वहाँ उस समय,
आन बोली मधुर बोल वात्सल्मय,
नीर ढोना नहीं जानती जानकी,
कष्ट अनुभूति युक्ता मृदुलप्राण की ॥
"अब न कर तू अधिक श्रम" कहा—
एक ही बार बस देख उद्यान को
है प्रथम बार आई अहा ॥ २३ ॥

आ अरी लाड़ली छाँव ठण्ड़ी इधर
छोड़ सब, बैठले, और कुछ भी न कर,
मैं करा दूँ सु-परिचय उटज-रीति से,
बोल यह, ले गई फिर बड़ी प्रीति से ॥
तापसी संग सीता तभी—
छाँह में बैठ विश्राम करने लगीं
नीर ढोने लगीं सखि सभी ॥ २४ ॥

तापसी ने कहा जानकी हो विदित,
कार्य करते सभी लोग श्रद्धा सहित,
फूल प्रति फूल होती प्रथक बास है,
भिन्न जीवन नए प्रेम का वास है ॥
प्रीति है भाव अनुयायिनी—
आसुरी ईश्वरी मानवी भेद से
ठीक होती सुफल-दायिनी ॥ २५ ॥

दम्भ मद से तथा काम उत्कर्ष से,
देह बल रोष से आत्मापकर्ष से,
लोग करते तपस्या असुर भाव से.
है असम्भव तुम्हारे मृदुल भाव से ॥
देव द्विज गुरु बुधों को सदा—
शुचि सरल चित्त से प्रेम श्रद्धा सहित
पूजती तुम रहो सर्वदा ॥ २६ ॥

शान्तिप्रद सत्य एवं सुभाषण अहा !
पूर्ण जीवन तुम्हारा सुभूषण रहा ।
पा सका छू न मन को तुम्हारे कपट
घुप सकेगी न माया तुम्हारे निकट ॥
सौम्य मूरति तुम्हारी शुची—

कह रही है विषय के गहन में नहीं
रह गयी हैं, तुम्हारी रुची ॥ २७ ॥

लग रही तापसी तू प्रकृति से मुझे,
देखने मात्र से जान पाई मुझे ।
प्राण पावन तुम्हारे अधिक है मृदुल
घोर तप से मिला चारु दुष्प्राप्य फल ॥
पुण्य लतिका सुमन यह अभी—

आचरित नित नई तापसी का सुश्रम
है न अनुकूल उसके कभी ॥ २८ ॥

संग सुकुमारियों के विचरती रहो,
और तुम्बी लिए नीर भरती रहो ।
साथ उत्साह दीपक बढाओ वहीं,
छोड़ तुमको सभी वे न जाएँ कहीं ॥
मैं उन्हें कह रही हूँ अभी—

रोक संकोच से कष्ट सहना नहीं
तुम पिपासा क्षुधा को कभी ॥ २९ ॥

बालिकाएँ कभी रम्य आराम में,
कार्यरत हों, तभी बैठ आराम में ।
वस्तुएँ अभिलषित हों तुम्हारी जभी,
आन अविलम्ब देंगी कुमारी सभी ॥
तुम स्वयं घूम उद्यान में—

तोड़ लेना स्व-इच्छित सकल फूल फल
लेश शंका न रख ध्यान में ॥ ३० ॥

सप्त घटिका दिवस था अभी छा गया।
बालिका दल लिए रिक्त घट, आ गया।
तापसी के निकट स्वेद युत देह से,
मंद गति आन बैठीं सभी नेह से।।
प्रस्फुटित हो धतूरा धवल—
पास में हो यथा राशि फल की वहाँ
संग हिमयुक्त मंजुल मुकुल ।। ३१ ।।

सब वहां से उठीं और फिर स्नानकर,
वे गईं लौट निज वासस्थान पर।
मुनि जनों ने सुलभ जो किए मूल फल,
बैठ भोजन किये साथ मिलकर सकल।।
अध्ययन प्राध्यापन हुआ—
रीति अनुरूप इस भाँति मुनिवृन्द का
पुण्य मध्याह्न-यापन हुआ ।। ३२ ।।

उन तपस्वी जनों के सुखद स्नेह से,
हट गया दुःख सती का हृदय-गेह से।
स्वर्ण-पथ में कभी राज्य सुख-सारभी,
पड़ सका भूल से ही न एक बार भी।।
मानसिक स्वच्छ सर में अरे!
रूप मनहर लिए राम कलहंस हो
अनवरत मंजु क्रीड़ा करे ।। ३३ ।।



(षष्टम सर्ग)

उठ चित्रा में एक दिवस शशि गगन में
विकसित हुआ नवीन मालिका गहन में।
धीरे धीरे आश्रम की मल्ली-लता,
विकसित पुंज प्रसून मोद से संयुता ॥

वकुल माधवी जुही निआली गन्ध से,
चला पवन यो भार युक्त गतिमंद से।
तमसा तट से स्वच्छ चन्द्रमा की किरण,
आलिंगित स्वच्छन्द कररही संवरण ॥

सीता-उटज समीप भिन्न आकार की,
विटप छवि विधु किरणें विविध प्रकार की।
प्राची दिशि में धीरे हो कर अग्रसर,
बढा कलेवर कभी छिपातीं ह्रास कर

कुटिया से कुछ दूर ज्योत्सना रंग में,
बैठी थी जानकी सजनि के संग में।
दिखती थी विधुकिरण सती के पास ही,
छिटक रही हो यथा अंग से ही सही ॥

प्रश्रय ले खद्योत युगल एक पत्र पर,
चमक रहे थे निशिपति से भी मंजुतर।
देख सती बोली मन में तुम धन्य हो,
यद्यपि रे खद्योत! कीट कुल जन्य हो ॥

जगती में हैं जीव अधिक तुम से बली,
पर क्या है तन कान्ति कहीं तुमसे भली।
बडा भाग्य पाया था तुमने ईश-वर,
लोक नेत्र द्युति तेरी इससे प्रीतिकर ॥

चक्रवाक स्वर तभी कर्ण को खींचता,
बार बार सुन पड़ा करुण रस सींचता
सती-नयन-सरिता करुण जल से पली,
दृग कपोल के कूल सहारे बह चली ॥

चंचल हो जानकी छिपा सखि ओर से,
श्रम सीकर मिस अश्रु पोंछ पट छोर से।
समझ सखी ने कहा सुशीले तू बता,
निशि आनेपर चक्रवाक क्यों बोलता?

नगरों में भी क्या यह पक्षी डोलते
मध्य रात्रि में कातर हो क्या बोलते?
यदि ये चिल्लाते, तो सब नागरिक जन,
सुनकर क्या सोचते सभी के धीर मन?

सती संभल न पाई सुन; जल नैन का,
कण्ठ स्वर ही बना विरोधक बैन का।
उसे देख बोली सखि छोडो यह कथा,
क्षमाकरो चापल्य व्यर्थही दी व्यथा ॥

बोली सीता सखि अपना परिचय सही,
नहीं दिया इसहेतु व्यथा मन हो रही।
किया भरोसा मेरा अन्तिम जीवन ही,
साथ तुम्हारे बीतेगा बस यहीं कहीं ॥

अपनी बीती तुमसे यदि मैं नहीं कहूँ,
तो कैसे विश्वास-प्रीति तुमसे लहूँ।
कहने से कम हो मेरा दुःख भार भी,
समझ सको तुम यह कैसा संसार भी ?

राजनन्दिनी मैं सखी सम्पद दोल में,
पली राजनगरी के मधुमय कोल में।
पिक मराल शुक सारी मंजु मयूर सुघर,
राजनगर था कोलाहल से मधुर मुखर।।

चक्रवाक बोलता कभी जब निशिघन में,
नहीं दुःख होता मेरे बालक मन में।
शैशव हुआ समाप्त आ गया जब यौबन,
देखा आए देश देश के राजा गन।

जटित रत्न से धनुष पिता ने एक सुघर,
रक्खा जो दे रहा दिखाई अति मनहर।
एक एक कर छूकर धनु सब राजागण,
एक बार ही देख लौटते निज आसन।।

रत्नक्रीट ढकते थे बढ़कर केश धवल,
कितने ही नरपति दिखलाते अपना बल।
नृप किशोर केशरी युवक कितने आते,
धनुष और प्रत्यञ्चा छू कर फिर जाते।।

निष्फल साहस दर्प युक्त गति चञ्चल को,
आती थी सखि! हँसी देख उनके बल को।
राज भवन में बैठी लेकर कौतूहल,
सखियों साथ देखती थी मैं दृश्य सकल।।

और अंत में क्षत्री-कुल आभरण-चूल,
वर वर्ण कर रहा गंजम मरकत कांतिमूल।
विकट धनुष के तभी बढ़े वे शोभाकर,
राजपुत्र के रूप खड़े हों ज्यों दिनकर।।

उन्हें देख कर मन मेरा था द्रवित वहीं,
इस तपसी जीवन में वह अनुभूति नहीं।
राजाओं को देख किया उपहास था,
उसी चपलता का होता अब हास था।

ऐसा सुन्दर रूप मिलेगा दर्शन में,
सोचा था यह कभी न सखि अपने मन में।
मेरा निर्मल हृदय भक्ति कर प्रीति वरण
वन्दन कर सविनय उनके युग रंग-चरण॥

जो तोडेगा धनुष उसे मेरा अर्पण,
करने को ही किया जनक ने ऐसा प्रण।
मैंने सोचा उस दिन ही प्रण हुआ शेष,
लेकर तपस्विनी बनूं पिता का शुभादेश॥

कौन धनुष तोड़ेगा उसका क्या निश्चय,
इन्हीं वीर ने करडाला मेरा मन क्रय।
मन में हो जब एक, अन्य बन जाये पति,
मृत्यु और जीवन में हो भीषण दुर्गति॥

जिसका कर कमनीय पुष्प-धनु पात्र है,
उसका धनु धारण ही निन्दा मात्र है।
मेरे भाग्यवीर ने धनु लेकर दुर्धर,
तोड़ दिया अन्तरतम का संताप प्रखर।

हुआ उसी वर वीर साथ मेरा परिणय,
धन्य हुई पाकर उनका स्वर्गीय प्रणय।
वीर शिरोमणि तीन अनुज उनके सुन्दर,
ग्रहण कर रहे थे मेरी बहनों के कर॥

पितृ पुर से पति-पुर जाने के पाथ में-
अथ दिव्य शराशन फिर पति हाथ में।
भार्गव कुल का प्रवर क्षत्रि-कुल केतु था,
उनका धनु अर्पण मेरा भय हेतु था॥

फिर पाएगे कान्त कान्तिमय कामिनो,
होगी मेरे अर्ध प्रणय की स्वामिनी।
प्रभु ने ले जब धनुष कान तक खींच दिया,
भृगुकुल-वीर-श्री ने उनको वरण किया।।

सोचे मन कुछ और मिले फल और ही,
दैव-विधान समझ में सखि आता नहीं।
शौर्य पताका दिव्य उडा करके गगन,
लौट रहे वर-वीर प्रफुल्लित मोद मन।।

सम्पति-वन था ससुर हमारे का निलय
आकर घुसते शुभ संवादों के मलय।
शोभा तरू मै खिले आज आनन्द-सुमन,
और-प्रभा के पल्लव हर लेते जन-मन।।

आता नव-परिणीत चार थे वीर जय,
आभूषण रत्नों से होते दीप्ति मय।
उनसे अधिक सजे बधुओं के बेश थे,
महोल्लासित करते सब भवन प्रवेश थे।।

सखि ! उस राज भवन में बृद्धा एक थी,
वाणी बरसा रही हर्ष अतिरेक थी।
विभ्राजित था जिन तारों से निखिल गगन,
आज सुसज्जित था उनसे राजेन्द्र-सदन।।

निज बहनों के मैंने देखो मुख मण्डल,
हुए नवीन प्रेम की लज्जा से पाटल।
प्रकट वहाँ से हुए अधिक श्रम कण नये,
रत्न ज्योति से ज्योतिर्मय थे हो गये।।

स्वेद विन्दु पूरित ललाट में विधु किरण,
देख-देख सखि ! वह होता है स्मरण।
स्वर्ग सम्पदा की बातें फैली जन में,
श्रुति उनको सच मान लोभ देते मन में।।

स्वर्ग लोभ में नृपति छोड़ कर सिंहासन,
तप करता है वन में कर फलमूलाशन।

मैंने जो देखा सखि ! पूज्य श्वसुर घर में,
सोचा यह सब होगा नहीं अमर पुर में।
सास ससुर का स्नेह प्रीति पति का संम्प्रति,
हेय सभी यह हुआ भान सुर-पुर के प्रति।

हुए महोत्सव कितने नवल महान वहीं,
होते हैं भी जग में मुझको ज्ञान नहीं।
आलोकित रत्नों से सुखकर राजनिलय,
प्रीति रत्न पति से पा कटने लगा समय।

सुनने को तब वहाँ चक्रवाकों का स्वर,
मिलता नहीं रात दिन था मुझको अवसर।
बारह वर्ष व्यतीत हुए इस सुख धन में,
बारह दिन से लगे मुझे मेरे मन में।।

दिवस एक बोले स्वामी उल्लास में,
आज रात में रहें प्रिये ! अधिवास में।
तुम्हें बनाने को निज उर का आभरण,
कल मुझको कर रही राज लक्ष्मी वरण।।

बोली मैं हे नाथ ! दिव्य अनुराग तुम्हारा,
होगा नहीं विभाजित तो जो पूर्ण हमारा।
वह बोले यह तो स्वाभाविक बात है,
सती चरण में झुकता श्री का गात है।।

घन होकर सागर जल उठ आकाश में,
जन-हित कर लौटता सिंधु के पास में।

मंगल विधि से हुई निशा शेष थी,
शुभ वाद्यों की शोभा प्रात विशेष थी।।

कान्त गए सह सचिव पिता के पास में,
मुझसे बोले लौट दुःख आभास में।।

जीवन-संगिनी छोड़ तुम्हारे ढिग जीवन,
जाता हूँ मैं आज तात आज्ञा से वन।

प्रिय भैया होंगे मेरे युवराज भरत,
राज्य लक्ष्मी हुई उन्हीं की प्रणत निरत
न-रख मानिनी! निज ज्येष्ठा अभिमान को,
रखना उसके राज-मान-सम्मान को।।

देखा मैंने निज स्वामी का मुख मंडल,
दिखता था जो शान्त पूर्ववत् ही उज्ज्वल।
मन होता था वन जाने के लिए चपल,
किन्तु हमारे लिए हृदय हो रहा विकल।।

लेती मान बात उनकी परिहास भी
उठा तभी सब और रूदन उच्छ्वास भी।
हाहाकार प्रकम्पित पुर उद्भूत था
यह क्या विस्मय दायक स्वप्न अभूत था।।

कहा चकित हो नाथ! आप यदि जाएँगे बन
राजपुरी में इस दासी का कौन प्रयोजन?
युवराज्ञी होती अब बनूँ भिखारिणी
करूँ पाद-सेवा होकर वन-चारिणी।।

मति गति मेरी श्री चरणों में है सदा
विना तुम्हारे अनचाही सुर सम्पदा।
अनुज तुम्हारे प्रिय होंगे युवराज तभी
हँस हँस कर वनगामी होंगे आप जभी।।

युवराज्ञी होगी मेरी माण्डवी बहन
बनूँ न क्यों पदचारी आपकी पुण्यधन
तज कर यह सुख वच न सकेगी सीता
उसे चरण-सेवा बिन जग है रीता।।

जो कुछ भी विषाद छाया था प्रभु के मन
दूर हो गया सुनकर मेरे युक्त वचन।

माता, भ्राता, पिता, बन्धु, परिजन-पुरजन,
छोड़ सभी ले मुझे साथ चल दिये विजन ॥

केवल लक्ष्मण हो, जो थे मेरे देवर,
हुए नाथ के साथ वास वन के सहचर
विस्मृति-नद में गिरा राज सुख डूब गया,
किया भ्रमण गिरि-कानन ले आनन्द नया ।।

सखी-रूप पाकर वन में मुनि कन्यागण,
स्नेह सौख्य जल में उनके मैं हुई मगन।
अधिक दिनों तक पंचवटी-वन में रही,
पुलकित जीवन गोदावरी समीप वही ।

प्रात पवन वन के पुष्पों का वास हरे,
मन्द मन्द आकर कुटीर में सुरभि भरे।
कर्ण-कुहर में देती ढाल मनोरम स्वर,
आकर रूप राज-मागध के पिकी सुघर ॥

मोर-मयूरी प्रातः नर्तन-रत आकर,
मंडित करते कुटिया का प्रांगण-प्रान्तर।
कौतूहल वश आ जाते थे मृग-शिशु-गण,
करने को मेरे कर से नीवार-ग्रहण।

गज-शिशु जननी-गोद छोड़कर आ जाते,
ले-ले कर से खाद्य खेल करके, खाते।
विविध कुसुम ले गूँथ मनोहर हार को,
कान्त-कण्ठ डालती प्रीति-उपहार को ।।

सुमनों से सजकर वेणी परिहास में,
कान्त कुसुम-वन फिरें मुझे ले पास में।
कहते सखि! तू मेरी प्रतिमा प्रीति की,
प्राण-सजनि सुख गरिमा स्वर्ग पुनीत की ।।

मैं कहती "प्राणेश" प्रेम अधिकार है,
अतुलनीय इससे सुर-पुर-सुख-क्षार है।

फूलों के स्तम्भ चन्द्रातप सांज सुमन,
कुसुम-कदम्ब एक दिन रच कर सिंहासन ॥

कर प्रसून का छत्र सुमन की चामर,
निर्मित व्यजन विचित्र कुसुम का शोभाकर।
कर किरीट निर्माण केतकी के दल से,
जड़े सुमन अति रम्य रत्न थे निर्मल से ॥

विनत कहा, "पूजूँगी करूणागार चरण"
सिंहासन बस एक बार कीजिए ग्रहण।
सम्प्रति बोले महामना मुझसे तभी,
राजोचित उपचार मुझे वर्जित सभी ॥

फूलेश्वरी बनाउँ वन की आज तुझे,
हाथ पकड बल से सुमनों से साज मुझे।
उनकी टूटे शपथ मुझे आपत्ति थी,
मुझको सम्मुख देख उन्हे परितृप्ति थी ॥

नेत्र निमीलित लज्जा से हो गये त्वरित,
पुष्पासन में बैठी मैं रह गई हर्षित।
बोले प्रिय सानन्द रसिक-वर केशरी,
डालो तुम करुणा कटाक्ष सुमनेश्वरी ॥

हर्ष प्रफुल्लित मुखमण्डल उनका लखकर,
बोलपडी यह अविधि हुई "विवेक शेखर"
जो मैं प्रभुचरणों की अर्चा योग्य नहीं,
बन सकती क्या तुच्छ सेविका भोग्य कहीं ॥

कहा प्रणयिनी प्रणयी की यह रीति है,
मानवृद्धि एक की अपर की प्रीति है।
स्वामी के मुख उनकी प्रेम कथा सुनकर,
धन्य भाग्य निज मान मुदित थी चुप होकर ॥

क्रम से संध्या हुई सुधाकर उठे गगन,
वन विहार में कान्त मुझे ले हुए मगन।

करने को रंजन तव फिर मेरे मनका,
वर्णन करते थे सुख कर निवास वन का।
चक्रवाक ने तभी निकट रव घोर किया,
सहज प्राणधन ने मेरा मुख चूम लिया।

कौतुक में मैं पूछ उठी इसका कारण,
कहा उन्होंने वही आज आ रहा स्मरण।
बोले, प्रेयसि यह तो कान्ता विरहित है,
दुःखानल से व्याग्र हो रहा दहित है॥

दिनभर रहता प्रियासंग सुख-सिक्त है
उसके बिना मानता जीवन रिक्त है
वन में तुमको यदि मैं निज सहचरी न पात
दुःख दग्ध मैं विजन-भ्रमण में तव हो जाता

विपिन-वास के निज सुख को कहता सुखकर,
मेरा जीवन नीरस वे करते मिलकर।
हैं स्वभाव से प्रिया बिना प्रिय प्राण विकल,
व्याकुल जीवन के माने संसार विफल॥

जीव डूबता हो जग के जलनिधि में ज
वनिता की तरणी का प्रश्रय मिलता तव
मुझको थी अनुभूति न कैसा विरह-दुः
उसको सुन हँस पड़ी लाज से विनत मुख

वीतगया कुछ समय हाय। फिर दुख आया,
मेरे जीवन पर उसने अधिकार जमाया।
करे भुक्तभोगी यथार्थ दुख का अनुभव,
मेरे अश्रुपतन का कारण कोक-रव॥

कहा तापसी ने सखि मैं समझी निश्च
तेरे प्रिय का हृदय प्रेम पीयूष निल
रोते होंगे कोक सदृश नर-केश
बीते शीघ्र तुम्हारी विपदा-शर्वरी

सोने का संसार हो गया क्षार यों,
घटना में यह घटा घोर कुविचार क्यों ?
जिसको राजा ने समझा था जीवन-धन,
उसे त्यागने को फिर कैसे माना मन ।।

विधिविचार धिक्कार
कहाँ पर क्या किया,
अमृत के ऊपर विष
ला ढरका दिया ।।

—o—

(सप्तम सर्ग)

सखि से दुःख का योग सती ने यों कहा,
दुर्विपाक मेरा केवल कारण रहा।
नहीं हमारे कर्मों के दोषी थे विधि,
और कान्त तो स्वाभाविक थे करुणानिधि ।।
हो सकता क्या प्रिय वियोग भी जीवन में ?
सोचा ऐसा न था किसी भी क्षण मन में ।।
सखी सहे इसलिए घोर वे दुःसह दुख,
देख सकूँगी अपने स्वामी का श्रीमुख ।।
हरे मुमूर्षा आशा आकर प्राणों में।
आश्वासन का मंत्र फूंककर कानों में ।।

स्वयं आज उस आशा का हो गया मरण,
दग्ध हो रहे प्राण स्वतः कर उसे स्मरण।
सखि बोली, मैं समझ न पाई ऐसे,
किसकी थी वह आश मरी फिर कैसे ।।
तुम समान साध्वी कपिला दारुण व्यथा,
विधि की निन्दा न करे यह अद्भुत कथा ।।

बोली सती हमारी गाथा दुःख भरी,
सब जाओगी जान श्रवण कर सखि अरी ।।
घोर कष्ट को दिया निमंत्रण था कैसे ?
निधन हुआ मेरी आशाओं का जैसे ।।

पंचवटी दिन एक कुटी के पास में,
हेम-हरिण था खेल रहा उल्लास में ।।
चित्रित चिक्कण चारु सलोना अंग था,
झलक रहा या भानु-किरण का संग था ।।
बिन्दु विचित्रित हेम-अंग की कान्ति थी,
नेत्रों में लग रही रत्न उद्भ्रान्ति थी ।।
कहीं न देखा मैंने मृग उस जात का,
नगर राज-पुर अथवा विपिन उपत्यका ।।
सोचा था जब कभी नगर फिर पाऊँगी,
यह सुचारु मृग एक साथ ले जाऊँगी ।।
चकित करूँगी दिखा इसे मति पुरजन की,
वर्णन करके साथ-साथ शोभा वन की ।।

उसे पकड़ने को तृण लेकर दिखलाया,
चौंक-चौंक कर मृगवर पास नहीं आया ।।
लुभा रहा मन और नेत्र सुखदाता था,
बारम्बार विजन में ही घुस जाता था ।।
मेरे मन को व्यस्त देख उसमें अहा,
स्नेह मूर्ति स्वामी ने तब मुझसे कहा ।।
सुन्दर मृग को ले आऊँगा तूर्ण अभी,
कर दूँगा तेरा कौतूहल पूर्ण सभी ।।
त्वरित चाल से धनुष वाण धारण करते,
कान्त चले वन प्रान्त उसे पीछा करते ।।
स्वामी सत्वर मृग के पीछे ही गये,
और दृष्टि सीमा से मेरी खो गये ।।

गूंज उठा रव वन में "रक्षा करो लषण",
उसको सुन विचलित हो गया हमारा मन ।।
मनके साथ वहाँ फिर जब दे दिये श्रवण,
पड़ा सुनाई फिर से "रक्षा करो लखन" ।।
वहीं उपस्थित जान वीर सौमित्र निकट,
मैं बोली देखो सुत आया है संकट ।।
लक्ष्मण बोले तुम अपना मन थिर करो,
नहीं राघवी भाषा है यह मत डरो ।।
वीर समझते हैं स्वभाव सखि ! वीर का,
देखा शान्त स्वभाव धीर गम्भीर का ।।
नारी हृदम सत्य ही होता अति दुर्बल,
सुनकर उनकी बात हुई अत्यन्त विकल ।।

विनती करके तब कठोर भाषण किया,
स्वामी के सन्निकट उन्हें भिर भेज दिया ।।
मेरा सुख सौभाग्य सम्पदा राशि सभी,
लक्ष्मण की गति-श्रोत मध्य डूबे तभी ।।
विपदा ही तब मानो विग्रह धारण कर,
योगी वेश द्वार आई भिक्षुक बनकर ।।
भिक्षा दान समय बल से घर मेरा कर,
बैठाया विमान में ले जाकर सत्वर ।।
विनय और तर्जन मैंने कितने किये,
उस दुर्जन ने तनिक कान तक नहीं दिये ।।
जान गई मैं वेश नहीं गुण-चिह्न है,
बाहर साधु वेश भीतर कुछ भिन्न है ।।

लोग मानते सब शुभदायी धर्म है,
धर्म नाम ही यम का, कैसा मर्म है ?
दक्षिण दिशि की ओर चलाया खल ने रथ,
घने घोष से कम्पित करता था नभ पथ ।।

क्रन्दन रव जितना ऊँचा बढ़ता जाता,
रथ घर्घर स्वर में विलीन होता जाता ।।
देखा वन में नीचे मोर मयूरी गण,
देख देख कर मुझको, करते करुण रुदन ।।
यूथ यूथ में मृग गण करके ऊर्ध्व नयन,
चकित दृष्टि से वे निहारते थे स्यंदन ।।
पथ अवरोधी नभग एक ने समर किया,
पामर ने उसको भी पक्ष विहीन किया ।।

होती है प्रतिकूल पवन की गति कहीं,
बिहंग रोक पाया उस दुर्मति को नहीं ।।
पथ की पर्वत श्रेणी मस्तक टेक कर,
रोक न पायी व्योम-यान-गति छेककर ।।
भू-मानव को सूचित करने के लिए,
रही हेरती नीचे दीन नयन किए ।।
रथ घर्घर में क्रन्दन ध्वनि हो रही विफल
समझ बूझ कर गिरा दिये भूषण सकल ।।
देखा नदियों को भी व्याकुलता सहतीं,
क्षीण-गात होकर जैसे निश्चल वहतीं ।।
तुंग विटप सब तन को संकोचित करके,
उसे देख भिड गए परस्पर वे डर के ।।

अवनी क्रम से थी नीरव हो गई तभी,
मृग विहंग डर से छिपते जा रहे सभी ।।
याम्य और पश्चिम प्राची मे ककुभ त्रय,
पडे दिखाई क्रम से गाढ़ नीलिमा मय ।।
पृथ्वी का कुछ लक्षण नहीं दृष्टि आता,
किन्तु दुष्ट का यान उधर को ही जाता ।।
क्षितिज दिखाई पड़ा सामने ही उज्ज्वल,
समझी मै सम्भवतः होगी विजन अनल ।।

जैसे ही रथ आता जाता पास था,
ज्योति पुंज छिटकाता दिब्य प्रकाश था ।।
सोचा मैंने गगन छोड तारा सकल,
दिन में ही आगये वहां सब दल के दल ।।

निशिपति के वियोग से तज कर नभ मंडल,
जला रहे हैं अपने उर में बिरह अनल ।।
मेरो मर्त्यलोक लीला थी आज शेष,
क्या इसी लिए था शमनपुरी में समावेश ।।
श्रेणी में अटारियाँ दिखती थीं मनहर,
हेम कलश दिखते थे कितने रम्य सुघर ।।
दिखा नगर प्रासाद वीथियाँ राजती,
दिनकर किरणे ही मानो पुर साजती ।।
सौध शिरों पर कलश स्वकिरणों से उज्ज्वल,
फैला दिव्य प्रकाश कर रहे थे झलमल ।।
उसी समय मेरे मन में यह ज्ञान हुआ,
योगी निश्चय ही कृतान्त-चर भान हुआ ।।

राम समीप जाऊँगी मैं दर्पित होकर,
कान्त-भक्ति की उज्वल उन्नत असि लेकर ।।
नगर प्रांत में योगी ने रोका रथ को,
और चला फिर देख एक उपवन पथ को ।।
चारु संगमरमर से शोभित थी सरणी,
कुसुम फलों से उपवन-शोभा मन-हरणी ।।
तरु अशोक के अधिक दिखरहे खड़े हुए
कुसुम पुंज के पुंज मंजुता मढे हुए ।।
था उज्ज्वल उद्यान-मध्य में एक हर्म्य,
जो विषय रत्नसे जटित दिखरहा अधिक रम्य ।।
बोला योगी मुझसे, तू अब रह यहीं,
और चित्त मैं कान्त विरह सोचना नहीं ।।

तेरा कानन वास कष्ट अब हुआ शेष,
सुरपुर सुख भोगो अब मंडित कर यही देश ।।
तीन भुवन में भी जो सम्पति है दुर्लभ,
बस इच्छा करने से होगी तुझे सुलभ ।।
सुकुमारियां सहस्त्र स्नेह सद्भाव से,
चरण कमल की दासी होगी चाव से ।।
रत्न भूषिता सुन्दरियाँ वर वेश में,
उन्हें बुलाकर बोला दृढ आदेश में ।।
इसे समझ कर तुम मेरी हृदयेश्वरी,
सेवा करना सदा भक्ति भावना भरी ।।
इसके मन अनुकूल कार्य में रत रहना,
सुना सुना कर मेरी यश गाथा कहना ।।

मन रम जाए मेरी सम्पति में जैसे,
सब प्रकार के सदा यत्न करनां वैसे ।।
इतना कह करके योगी जब चला गया,
मेरे उर अन्तर में विस्मय समा गया ।।
वह योगी है कौन मुझे लाया क्योंकर,
कुछ भी जान न पाई यह है कौन नगर ।।
हृदयेश्वरी बन गई इसकी मै कैसे,
रघुकुल बधू-शरीर अभी भी है वैसे ।।
अब भी तो जीवित हूं यह है मुझे स्मरण,
कौशल्या नन्दन ही मेरे प्राण-शरण ।।
फिर मैंने कर लिया हृदय में दृढ निश्चय,
जो कोई भी हो योगी इनमें क्या भय ।।

जबतक जीवित रहूं रहे बस यही स्मरण,
एक मात्र मुझको कौशल्या-सुअन शरण ।।
यम का आलय हो अथवा यह स्वर्ग हो,
चाहे विहरित यहाँ देवता वर्ग हो ।।

कर पाएगा कौन हमारा चित्त हरण,
एक मात्र मुझको कौशल्या-तनय शरण ॥
मुझे सहस्र दासियों से है कौन प्रयोजन,
क्या करना है और हमें अब मज्जन भोजन ॥
भ्रमण कर रहें होंगे बन में प्राणपति,
और रहेगी उनके चरणों में ही मति ॥
मंजुल वीणा लेकर यदि शत भारती,
पास हमारे यह संगीत उचारती ॥

मेरे कानों में उसका है मूल्य क्या?
हो सकता प्रियतम-भाषा के तुल्य क्या?
सोच सोच ऐसा श्रीपद में ध्यान लगा,
जीवन का भी मुझे भूलने ज्ञान लगा ॥
जाने कैसे कितना काल अतीत हुआ,
पति चिन्ता में सारा समय व्यतीत हुआ ॥
किन्तु रात दिन मुझे वहां लगते ऐसे,
अमर-वर्ष के ही समान हों वे जैसे ॥
देव भुवन ही उसे मानती थी मन में,
परिपूरित कर दैवी साहस जीवन में ॥
माँगा करती प्रभु से मुझको शक्ति दे,
दैवी-हृदयोचित ही पति की भक्ति दे ॥

रखती थी पति के चरणामृत-आशा को,
और नहीं गिनती थी क्षुधा-पिपासा को ॥
विविध भाँति के अंगराग बहु आभूषण,
खाद्य अनेक प्रकार आनकर दासी गण ॥
कहती थीं कितने ही मुझसे चाटु बचन,
विचलित किन्तु नहीं कर पाती मेरा मन ॥
दासी के वचनों से मैं जानी क्रम से,
रावण त्रिभुवन जयी स्वकीय पराक्रम से ॥

सुनकर उसका नाम डरा करते सुर-पति,
लंका जिसका धाम जिसे घेरे सरि-पति ।।
लाई गई हरण कर मैं उस देश में,
दुर्बिनीत के द्वारा योगी-वेश में ।।

नवल नगर उसका था अनुपम अमित रम्य,
जो मानव और किन्नरों से भी दुरधिगम्य ।।
मन में जो उठती सारी अभिलाषाएँ,
भय से सुर पूरी करते सब आशाएँ ।।
आ जाने पर तनिक अरुणिमा लोचन में,
विधि विपत्ति का भय करने लगते मन में ।।
रावण नाम सुना तब समझी आप से,
खण्डित गर्व हुआ जिसका शिव-चाप से ।।
सोचा कैसे साहस आया श्वान को,
करने के हित यज्ञ-सुधा के पान को ।।
और सत्य ही एक दिवस वह दुर्मति,
अनल तेज सा आन खड़ा मेरे सम्प्रति ।।

पापी मन से पाप वचन से पापी ने,
किया प्रलापारम्भ स्वगरिमा ज्ञापी ने ।।
मेरी दुख-घन-घटा पूर्ण दृग-वारि-धार,
देखकर हटा वह लिए गर्व का अंधकार ।।
मेरी उस घन-घटा बीच में चमक गई,
उसकी आशा भोमतड़ित की छटा नई ।।
सखी हुआ मुझको जिस दिन से ज्ञात था,
दानव ने छू लिया हमारा हाथ था ।।
स्पर्श स्थान से उठ शरीर में व्याप गई,
दुसह प्राण अस्थिर करती थी ज्वाल नई ।।
गरल बुझाए गये विषमतर विशिष पटल,
होते थे प्रतिभात गात के रोम सकल ।।

व्याध-बाण से आहत होकर हरिणी-गण,
कैसा दुख भोगते सोचता मेरा मन ।।
सहे कष्ट जो असहनीय थे मर्म में,
दृढ़ मति करते जाते थे वे धर्म में ।।
यही भरोसा दृढ़ता से रहता केवल,
अबला के हित सदा रहा है धर्मबल ।।
एकबार बनकर अजान असुराधम से,
हाथ बढ़ा भिक्षा देदी मैंने भ्रम से ।।
दिखलाएगा अब यदि वह बल का प्रकाश,
तो मारूँ या होऊँ उसके कर से विनाश ।।
यदि सत्य वस्तुतः है संसृति में विमल धर्म,
तो जगती देखे मेरा यह अद्‌भुत सुकर्म ।।

हो पाप तूल-पर्वत सा ही कितना विशाल,
पर दग्ध कर सके पुण्य-अग्नि का कण कराल ।।
हे सजनी ! देख, हो धर्म स्वयं ही सत्य-सार,
है ढाल रहा मेरे प्राणों में अमृत–धार ।।
दे गया कीश मुझको स्वामी का सुसंवाद,
कर गया किंतु रावण से वह जमकर विवाद,
फिर शीघ्र सुभग रघुकुल-मणि बानर-दल-बल में
करके निर्माण सेतु का सागर के जल में ।।
दुर्लंघ्य सिंधु को लाँघ आक्रमित कर लंका,
राक्षसपति के प्राणों में स्थापित कर शंका ।।
कर दिया यज्ञ रण का दुस्कर आरम्भ तभी,
थे काँप उठे लंका में सुन कपि–नाद सभी ।।

उद्‌भूत वीर जितने भी थे राक्षस–कुल से,
आकर बलि होते सभी यज्ञ में व्याकुल से ।
बस एक व्यक्ति ही करता था धर्माचरण,
जो रहा सदा ही रघुपति चरणों की शरण ।।

वह महायज्ञ में अटल यूप सा बन करके,
था अभय-पुष्प की माल कण्ठ धारण करके ।।
झर रहे हमारे नेत्र अश्रु के कण जितने,
वह रहा राक्षसी-रुधिर कोटि गुण में कितने ।।
रावण डूबा शोक सिंधु के त्रास में,
पड़ा नाथ के वाण-ग्राह के ग्रास में ।।
तदनन्तर श्री रघुपति मुझको देखकर,
स्नेह शून्य नयनों से लघु सा लेखकर ।।

जग में नहीं कुसंग कहाता पाप है,
मिले कुसंगी-संग घोर संताप है ।।
तू थी कामातुर दानव के भवन में,
पाप-भाव भी कभी उठे होंगे मन में ।।
कर सकता हूं नहीं तुझे मैं और ग्रहण,
स्वीकारूँ तो उठे तुरन्त लोक गर्हण ।।
जलद-वारि जब नीचे करता है गमन,
कैसे उसको और रोक सकता है घन ?
अनल शिखा की भाँति, अनलमें ही जलकर
वारि ऊर्ध्वगति पाता है घन में मिलकर ।।
सोच रही जीवन अबतक पा गया शरण,
सेवा कर पाऊँगी प्रभु के पद्मचरण ।।

पात्र न जो बन सकी नाथ-पद-सेवन की,
लाभ लालसा कौन करे फिर जीवन की ।।
दहन करूँगी देह देखकर मैं श्रीमुख,
है इससे फिर अधिक और क्या मुझको सुख ।।
देह दग्ध होने पर निश्चय प्राण ये,
जा कर प्रभु-श्री अंग पायेंगे त्राण ये ।।
और धर्म के बल से यदि रह गई देह,
तो प्राप्त करूँगी अपने प्रभु का द्विगुण स्नेह ।।

बोली तब मैं अग्नि प्रज्ज्वलित की जाए,
उसमे ही प्रविष्ट यह दासी हो जाए ।।
अकुण्ठ आज्ञाकारी ने कुण्ठित चित से,
आग जलादी लक्ष्मण ने सत्वर गति से ।।

पवंन वेग से अनल शिखा भूपने लगी,
चंचलता से बढ़ी गगन चूमने लगी ।।
लगा तृषित नयनों को प्रभु-मुख-कमल से,
जा पहुँची पावक समक्ष हार्दिक बल से ।।
बोल उठी मैं, रवि, शशि, पावक, वायु, गगन !
तुम सबसे है छिपा नहीं प्राणी का मन ।।
राघव के अतिरिक्त अन्य में मेरा चित,
प्रेमाकृष्ट हुआ हो यदि कण भी किंचित ।।
अनल, चतुर हैं आप सर्व भक्षण में,
करदें मुझको भस्म अभी इस क्षण में ।।
हुई वन्दिनी थी मैं राक्षस नगर में,
मुझे छला हो उसने पातक डगर में ।।

कोटि जन्म तक निज स्वामी के चरण कमल,
देख न पाऊँ, दहन करो मुझको अनल ।।
पुण्यवन्त पापी तेरे हित एक सभी,
लो स्वधर्म अनुसार सती के प्राण अभी ।।
धर्म जगत में यदि है सच्चा और अमर,
तो अपवाद हेतु तू मेरी रक्षा कर ।।
रहो स्वगुण से धर्म हमारे अग में,
अभय अनल में घुसो हमारे संग में ।।
यदि अशक्य जीवन में तो उपरान्त मरण,
कर देना सेविका मुझे प्रभु-चरण-शरण ।।
मेरा गात जलाकर क्षार बना लेना,
स्वाद-रूप में वृक्ष मूल में दे देना ।।

उसी काष्ठ को कारीगर हाथों देकर
प्रभु-पद की पादुका मुझे करना लेकर।।
वारम्बार देख प्रभु मुख अनुराग में,
जा कर मैं निःशंक घुस गई आग में।।
देख उसे कर उठे रुदन रघुमणि लक्ष्मण,
क्रन्दन करने लगे घोरतर सैनिक गण।।
फिर असंख्य नयनों से वह करके अविरल,
लगा भिगोने मुझको वह कारुण्य-जल।।
लगने लगा वहाँ पर था पावक शीतल,
हा! हा! रव से भरा समस्त गगन मण्डल।।
मेरे ही अनुकूल गगन-बाणी हुई।।
प्रभु द्वार सतीत्व गरिमा जानी गई।।

शमित हुई थी अग्नि धर्म केवल से,
बचे हमारे प्राण धर्म के बल से।।
दुःख राशि तब दग्ध हो गई मेरी,
बनी भाग्य से प्रभु चरणों की चेरी।।
सोच रही थी कण्ठ मध्य रख जीव को,
प्राप्त कर सकी हूँ प्रभु-पद-राजीव को।।
मुझे बिठा कर मंजु यान में नाथ तभी,
रिक्ष और बानर दल लेकर साथ सभी।।
लौट रहे थे सभी अवध की ओर अरे,
नभ-पथ से हो सुखी विजय उल्लास भरे।।
चिर वियोग-मरुदेश पार करके आये,
शुष्क प्राण ने पूर्ण प्रेम सागर पाये।।

हुआ प्राण में था अपूर्व सुख का उदय,
और मान बैठी जग को आनन्दमय।।
दुख रहता है यदि अपने ही जीवन में,
नहीं दिखाई देता फिर सुख त्रिभुवन में।।

निज जीवन यदि स्वतः सुख सम्पूर्ण है,
तो सारा जग दिखता सुख परिपूर्ण है ।।
जिस रथ से मैं पड़ी विपद के कूप में,
उस रथ से ही चढ़ी सम्पदा-स्तूप में ।।
देख देख कर जिसे कभी मैं थी क्रन्दित,
देख उसी को आज हो रही आनन्दित ।।
रत्न-दीप्त था यान और थी तीव्र गति,
ऊपर छाये मेघ, तले था सरितपति ।।

सरित धराधर तथा धरणिरुह बहुतेरे,
हुए नयन के प्रीतिब्यूह में थे मेरे ।।
पहले के आवास और वनस्थल सकल,
पुंज पुंज सुविहार कुंज सुन्दर अचल ।।
धूम जटित ऋषियों के वे आश्रम अभय,
आकर्षित करने लगे मेरा हृदय ।।
व्यस्त कुन्तला मुनि कुमारियाँ मंजु सभी,
रथ-निर्घोष दूर से ही सुन कर तभी ।
चकित देखती थीं वे ऊर्ध्व वदन कर के,
पूर्व सुख-स्मृति मेरे मानस में भर के ।।
उनका पावन प्रेम समृद आदर सुधर,
मृदुल मनोहर मंजु कथा से लसित अधर ।।

सरल और ममतामय उनकी सुखद दृष्टि,
करती थी मेरे स्मर्णपटल पर सुधा वृष्टि ।।
क्रम से ही मुनि तनुजाओं के नाम सभी,
हुए प्रस्फुटित निर्मल नीरज से तभी ।।
घोर विरह की निशा तमिस्रा शेष में,
सुदिनों की ऊषा में सर-उपदेश में ।।
उनके गत कालीन सुभाव-सुवास से,
प्राणों को मोदित करते उल्लास से ।।

वन दर्शन से नहीं तृप्त मन हो पाया,
यान और द्रुत गति से आगे बढ़ आया।।
नैसर्गिक शोभा के आलय रम्य वन,
नहीं रोकने में समर्थ था मेरा मन।।

वह मन विचरण करता था नभ-स्यंदन में
घूम नगर में लगा सास-पद-वन्दन में।।
सुन्दर श्यामल कान्ति कान्त के संग मे,
खेल रहे थे तीनों सुथल-सुरंग में।।
मेरा मन हो गया अर्ध मण्डलाकार,
नीरद नवीन में शक्र चाप के ही प्रकार।।
तनय प्राण प्रतिमा से वन वासी जभी,
हुए हमारे श्वसुर अयोध्या-पति तभी।।
दुख से कर निर्बाण स्वजीवन दीप को,
चले गये वे सुरपुर शक्र समीप को।
भरत, राज्य को राजहीन दुखमयपाकर,
स्वामी के ढ़िग कानन में पहुंचे जाकर।।

हाथ जोड़ कर भरत वन गए दुख भाषी,
तब हम सब थे चित्रकूट केही वासी।।
वीर पुरुष की विनती में थी विनय सही,
स्वामी से महीश बनने की वात कही।।
पितृभक्ति को ही प्रगढ़तर कर वहीं,
राघव ने उसमें निज सम्मति दी नहीं।।
बोले छोड़ा नहीं सत्य के ही पन को,
त्याग पिता ने दिया अन्त में निज तन को।।
पूज्य पिता के पालित धर्म-बिहंग की,
तज विवेक सोचूं क्यों ग्रीवा भंग की।।
पावन पद में गिर रोकर बोले भरत,
रखिए मुझको चरण-शरण सेवा में रत।।

अवनि छोड़ अस्ताचल जाते भानु जभी,
उसे छोड़ क्या किरणें रह पातीं कभो ?
प्रभु बोले, अवनी के सारे दुख निशि में,
खण्डन करने की क्षमता रहती शशि में ।।
कहा भरत ने सविनय श्री रघुराज से,
पाता है शशाक सब कुछ दिनराज से ।।
रत्न-पादुका ले निज भाल-प्रदेश पर,
उठा सकूँगा भार यथा महि शेष पर ।।
मस्तक पर शोभित होंगी पादुका मणी,
सदा समझता रहे शत्रुकुल मुझे फणी
प्रभु ने दी पादुका भरत के हाथ में,
वीर शिरोमणि ने रख ली निज माथ में ।।

लौट पड़े वे नीर लिए थे लोचन में,
लगे राजलक्ष्मी के दुख के मोचन में ।।
अवधि शेष पर बाट जोहता था खड़ा,
ठीक वहीं पर पुष्पक जा कर उतर पड़ा ।।
करके तब विमान से नीचे अवरोहण,
करने लगी सासुओं की पदधूलि ग्रहण ।।
सानुज प्रभु को देख जानकी संग में,
डूब रहा मन मुद-नद मंजु तरंग में ।।
चरण पादुका चरणों में अर्पित कर दी,
छत्र और चामर से प्रभु-पूजा कर दी ।।
स्वामी राजा बने और मैं महरानी,
प्रभु मानस अनुसार चरण सेवा ठानी ।।

मेरे मानस में जो जभी उदित होताथा,
सत्वर वह ही तभी सुसम्पादित होता था ।।
नृप दम्पति सनेह नौका में बैठ कर,
थे क्रीड़ारत सुख-सागर में पैठ कर ।।

सम्पद की तरंग में बहुधा नए नए,
कौतुक से अनेक वत्सर थे डूब गए ।।
कौन जानता था मेरे ललाट में ही,
लिखे विधाता नें असीम दुख आखर ही ।।
घोर विपद रूपी वाड़व उपजेगी,
भस्मसात् कर सभी ध्वंस नर देगी ।।
नभ सोभा दिवसाबसान की हो जैसी,
दशा गर्भ के मेरे भी कुछ थी वैसी ।।

गर्भवती की अभिलाषा पूरण तत्पर,
स्नेह भरे प्राणेश हो गये अधिकतर ।।
" वन विहार करती वन सखियों साथ अहा "
ऐसा मैंने एक दिवस प्रिय से कहा ।।
उसी रात के पहले मुझको प्रात से,
लक्ष्मण पा आदेश चले निज भ्रात से ।।
मुझे आन सौमित्र जाह्नवी-तीर पर,
नौका से उतार कर बोले धीर धर ।।
कह यह वाणी सती कण्ठ में आ अड़ी,
आगे भीषण कष्ट देख कर रो पड़ी ।।
कहते हुए अजस्र नयन से धार बही,
मुनि कन्या ने उन्हें सम्हाला शीघ्र ही ।।

स्वयं रो पड़ी मुखसे मुख को जोड़ कर,
सुन सुन कर आगई तापसी दौड़ कर ।।
शीघ्र कुटी में दोनों को ही ले जाकर,
वहीं अनेक कथाएँ मन को बहला कर ।।
पादप जल-सिंचन से लेकर पुष्प चयन,
आदि सभी बातें कर करने लगीं शयन ।।

(अष्टम सर्ग)

जीवन में यौवन बढ़ता जैसे,
बढ़ बसन्त ग्रीषम आया वैसे।
युवा शक्ति जैसे होती प्रखरा,
आगई निदाघ हो प्रचण्डतरा ॥

तृष्णा सुख भोग की विषय भरी,
संचरित सुमृग-मरीचिका-परी।
सेमल तरु छोड़-तूल उड़ चली,
सूम सम्पदा यथा उखड़ चली ॥

पूर्व सा पलास में न रंग है,
यह अनित्य संसरण प्रसंग है।
मल्लिका सुताप तप्त फूटती,
अंग से सुवास अधिक छूटती ॥

साधु हृदय ताप से रहे अटल,
और बढ़े शान्तिपूर्ण यश प्रबल।
नयन निरख वनमल्ली के खिले,
साधु हृदय साधु से यथा मिले ॥

एकमत उभय हुए विचार म,
ग्रीष्म में सुवास के प्रचार में।
वर्षा से महि होगी जब शीतल,
पायेंगे शान्ति जीव जग सकल॥

हैं कदम्ब केतकी न वास कृपण,
लोक के हितार्थ करेंगे तर्पण।
अर्पण कर जन रंजन भर को,
छोडेंगे हँस तरु-संसार को॥

उन्नत शिर नलिनी निज गात से,
हर्ष से समर्थित उस बात से।
बोल पड़ी डूबूँ मैं संग में,
काल सिन्धु की तंरग तुंग में॥

मल्ली बोली यह होगा कहीं?
कान्तभानु तुमको छोडे नहीं।
नलिनी बोली जब घन आयेगें,
मेरा मुख प्रिय न देख पायेंगे॥

विपदा में करके कुछ दिन यापन,
भवव्रत का कर दूँगी उद्यापन।
स्वामी घन को न भेद पायेंगे,
जग मंगल हित दुख अपनायेंगे॥

चिरदिन प्रियतम के अनुराग में,
लिप्त रहुँ लिखा नहीं भाग में।
उनके चरणों का करती सुमिरण,
मृत्यु मुझे कर लेगी स्वयं वरण।

इसी जन्म में कुछ दिन सह करके दुखं,
पुर्नजन्म में देखूंगी प्रिय का मुख।
अपने श्रवणों से यह स्वयं जानकर
जीवन आदर्श उसे पूर्ण मान कर॥

बोलो सीता तू है साध्वी नलिनी
दिखती है तुझे पुण्य पूरित-सरणी।
हूँ विचार से ही मैं बहन तुम्हारी,
ऊपर से मैं हूँ फिर भाग्य की मारी॥

तुझसा स्वामी सनेह भोगा बनमें,
स्वच्छ सुधा मग्न सुख आनन्द भवन में।
तेरे प्रिय दिवस नाथ प्रभा प्रकाशी,
उसी वंश जन्में नृप मेरे स्वामी॥

कहती तू निज भविष्य की ही गति को,
मैं हूँ अपना चुकी उसी पद्धति को।
तेरा उर धन्य और धन्य तू सती,
जीवन में मुझको दे अपनी सन्मति॥

जननिन्दा से पाकर दुःख बहुतेरा,
स्वामी ने त्याग किया था तबमेरा।
अपर जन्म देख कान्त छविहर्षिणी,
हूंगी क्या क्षम्य, बोल दिव्य दर्शिनी॥

शीतल शतदल के दल-दल के तल में,
श्यामल घन वक्ष सु-सरसी के जल में।
काटा मध्याह्न कोक युग्म ने मिलकर,
राज हंस ने हंसी को ले सुखकर॥

सरसिज-वन चिंगुड़ी मीन हंस से बचकर,
उछल उछल चलने की गति को रच कर।
छत्र से विशाल पत्र-विपिन में घनी,
भूल गई अन्त में वक-पारणा बनी॥

उठे हुए कमलों के पत्र के तल में,
चिटक चिटक, सफरी चल पड़ी जल में।
कुमुदिनी को बंक नाल में न बैठ कर,
पखी भी फुदक रही डुण्डुभ से डर॥

डुण्डुभ पक्षी – विशेष

मलिन पिकी बैठ कर रसाल डाल पर,
काक-नीड के समीप पत्र डाल कर।
श्रुति सुधा न डाल प्यास से भरी हुई,
मानो छिपी चंड़ाल के भय से डरी हुई।।

जड़ में सुरंग लाल रंगी पूँछ हिल कर,
बुल बुल नहीं नचा रही फैला के डुला कर।
प्रतिपक्षी देख पूँछ हिला पंख तौल कर,
बोली नहीं वह कोप से निज चंचु खोल कर।।

उसको अहार मात्र ही आपस में जुझाता
भाई नहीं तो भाईका क्यों शत्रु कहाता।
बैठी थी उदर पूर्ण पनिकाय मोद में,
तरुवर विशाल शाल की डाली की गोद में।।

महुए के जंगलों में बैठे हैं शुक सकल,
भोजन के बहाने से काटते मधूक-फल।
अंकित होकर रहे मनो द्विज के स्वाभाव से,
वर्षा के लक्षणों को यंत्री में चाव से।।

तमसा के तीर लगे बट-तरु का तल
भरे निविड़ किसलय की छाया शीतल।
यहीं कुटज-बास-पूर्ण उटज में रह कर,
भजे सहज शाँति-चरण ग्रीष्म प्रखर तर।।

बाल्मिकि खोल जहां ज्ञान के नयन,
देख रहें बैठ थे श्रीरामायन।
करते थे तापस दल कहीं अध्ययन,
कोई कहीं कर रहे थे वेद का गायन।।

गर्भ-भार गुरुतर से आलसी सीता,
तापसी सुवेश हुई दिव्यवेष्ठिता।
निविड कूंज में पल्लव-आसन उपगत,
दर्शन कर शान्ति स्वयं सेवा में रत।।

परिधि युक्त होकर मानो शशिमण्डल,
आया निशि विदा समय पश्चिम अंचल।
पीत गण्ड मण्डल में स्वेद का पटल,
शिशिर प्राय लगता हिम नयनों का जल॥

वन-वासिनि बीच बैठ राम की रानी,
सोच रही लंका की विगत कहानी।
स्मर्ण करे तापसी पवित्र भाव को,
मन्द नारकीय राक्षसी स्वभाव को॥

स्मृति में आये वीर वायु के नन्दन,
किया तभी पवन देव का अभिनन्दन।
सादर देवी ने ताल-वृन्त हिलाया,
शीतल समीर का प्रसाद भी पाया॥

सुन्दरी चिन्ता तभी कुछ आगे बढ़कर,
बोली वचनों में विनय स्वर भरकर।
देवि द्वार आये हैं कितने प्रियजन,
हो सतृष्ण करने को तेरा दर्शन॥

धन्य दूर देश से ये आये चलकर,
दर्शन की आश लिए ताप से जलकर।
रूप मनोहारी है लगता तन का,
प्रीति का आकार बना है उर उनका॥

देवी बोली सखि तुम लाओ सत्वर,
धन्य भाग्य मेरे जो इतना आदर।
उनके दर्शन पाकर ये दृग मेरे,
करलेंगे पापों का क्षय बहुतेरे॥

निदेशानुसार एक जन आकर,
बोला मृदु मंद देवी से हँसकर।
बन्धु सा अतीत काल से परिचित,
प्रेम पूर्ण वचन-सुधा से सिंचित॥

देवि पूर्व कथा स्मर्ण है उर में,
डाले थे पद पुनीत मेरे घर में।
अंगतेज से तेरे मेरा अवयव,
हुआ था कृतार्थ प्राप्त कर प्रभा-विभव ॥

उसी प्रभा छल से हाँ मेरे निर्झर,
झरते हैं मोदयुक्त हो कर अर्जर।
हो प्रफुल्लता के आलय प्रसून गन,
हँस हँस निन्दित करते नन्दन कानन ॥

हो करके सरिता का नीर सुवासित,
करता तट वासी जन को उल्लासित।
तेरे पालित मयूर मद से माते,
ऊँचे स्वर में हैं नित गुणगण गाते ॥

तेरे दर्शन की वे आस ले अटल,
बार बार आते हैं मेघ के पटल।
घूम घूम खोज रहे प्रति दरी दरी,
जानकी कहाँ गई अनूप सुन्दरी ॥

पूछते गंम्भोर मन्द राव से वहीं,
और 'नहीं' कहने से मानते नहीं।
शम्पा आलोक लिए खोजते वहीं,
निश्चय श्री सुन्दरी होगी यही कहीं ॥

देवि जान पाई भाग्य हीन जो विकट,
आया चिर दिन में यह आपके निकट।
तेरे पदरज से ही साज के मुकुट,
बना भाग्यवान वही मैं हूँ चित्रकूट ॥

आई तदुपरान्त एक नव रंगिनी,
स्वच्छ धवल कान्ति लिए मंजु अंगिनी।
आतप--संताप--तीव्र—दर्प—गंजनी, —
बन कुमारियों को चिरकाल संगिनी ॥

शोभित गिरि मालिका उर माल रूप से,
मन हरता भव्य भाल था मधूक से।
कर्णफूल में जम्बू नीलरत्न से.
शुक्ति रचित कमरबन्धजडे यत्न से॥

वन वासी मुनियों के चित्त मोहती,
चारु कुटिल वेणी नव नील सोहती।
कल कोमल भाषा से पुलकित था मुख.
मधुर भाव ज्ञापित कर सीता सम्मुख॥

बोली. हे देवि ले कृतज्ञता मेरी।
मैं हूँ चिरऋणी स्नेह ऋण से तेरी.
मैं चुका सकूं ! नहीं है मुझमें वह शक्ति,
तू उबार मुझ को लेकर मेरी भक्ति॥

महि में मेरे समान होंगे कितने,
पाये होंगे कृपा तुम्हारी कितने ?
तेरा शुभ दृष्टिपात पाई जबसे,
रेणु बनी स्वर्ण मयी मेरी तब से॥

क्रीड़ा रंजित करते तेरे युग नेत्र,
मेरे उर रच डाला हीरक का क्षेत्र।
हों भले गिरीन्द्र-सुता श्री विष्णुपदी,
तुम्हीं से उपाधि प्राप्त मैं महानदी॥

आगई गोदावरी सम्मुख विशद काया,
मुख को मलीन कर रही विशाद की छाया,
व्याकुलता पूर्ण अश्रु करती मोचन,
अंचल से पौंछ पौंछ पद्म से लोचन॥

बहुत से विचित्र चित्र उज्ज्वल रंग में,
रंजित कर लाई थी अपने संग में।
सीता साध्वी को अनुमति पा सत्वर,
खोल के दिखाये उन्हें एक एक कर॥

वल्लरियों से कहीं कुसुमावली झड़ती,
दिनकर-किरण प्रचण्ड से गिरकर वहीं सड़ती।
पादप अनेक शुष्क पत्र दीन हीन-से
तेज से विहीन वेश में मलीन से,

कहीं किसी तरुवर की डाल हो विभंग,
रोक नहीं पाती थी पादप का अंग।
माँग रही तृण समूह से कहीं शरण,
किसका सिर चूम किसी के पकड़ चरण,

अण्डज पुरीष भरे पत्र थे सकल,
कर रहे शरीर किसी का कहीं धवल,
मकड़ी के जाल में कुछ मलिन वास से,
मुख ढाँपे दिख रहे विगतोल्लास से॥

वक-विक्रम देख देख दादुर के दल,
शीघ्र पलायन में वे हो रहे विफल।
कितने ही प्रस्तर के तल में खोकर,
उदर पूर्ति करते थे निश्छल होकर॥

वन्य महिष कहीं कहीं मिल दल के दल
करते वे पंकिल थे सरसी का जल।
जलज राशि कर्दम से हो करके लिप्त,
उनके पद तल में थे नीचे प्रक्षिप्त॥

अजगर कहीं अलस्त सा आहार आस में,
था काष्ठ सा पड़ा हुआ पानी के पास में।
उनके समीप ताकते मृग यूथ वे सरणी,
छिप चाट रहा था वहीं शार्दूल अकर्णी॥

देखा फिर उग्र घोर दाव का दहन,
धूम्र तिमिर फैल पूर्ण कर रहा गहन।
थी असंख्य शाखा में शिखि-शिखा प्रचण्ड,
नभ से मिलने को उठकर प्रखण्ड खण्ड॥

शोभित गिरि मालिका उर माल रूप से,
मन हरता भव्य भाल था मधूक से।
कर्णफूल में जम्बू नीलरत्न से.
शुक्ति रचित कमरबन्धजडे यत्न से॥

वन वासी मुनियों के वित्त मोहती,
चारु कुटिल वेणी नव नील सोहती।
कल कोमल भाषा से पुलकित था मुख.
मधुर भाव ज्ञापित कर सीता सम्मुख॥

बोली. हे देवि ले कृतज्ञता मेरी।
मैं हूँ चिरऋणी स्नेह ऋण से तेरी.
मैं चुका सकूं ! नहीं है मुझमें वह शक्ति,
तू उबार मुझ को लेकर मेरी भक्ति॥

महि में मेरे समान होंगे कितने,
पाये होंगे कृपा तुम्हारी कितने ?
तेरा शुभ दृष्टिपात पाई जबसे,
रेणु बनी स्वर्ण मयी मेरी तब से॥

क्रीड़ा रंजित करते तेरे युग नेत्र,
मेरे उर रच डाला हीरक का क्षेत्र।
हों भले गिरीन्द्र-सुता श्री विष्णुपदी,
तुम्हीं से उपाधि प्राप्त मैं महानदी॥

आगई गोदावरी सम्मुख विशद काया,
मुख को मलीन कर रही विशाद की छाया,
व्याकुलता पूर्ण अश्रु करती मोचन,
अंचल से पौंछ पौंछ पद्म से लोचन॥

बहुत से विचित्र चित्र उज्ज्वल रंग में,
रंजित कर लाई थी अपने संग में।
सीता साध्वी को अनुमति पा सत्वर,
खोल के दिखाये उन्हें एक एक कर॥

वल्लरियों से कहीं कुसुमावली झड़ती,
दिनकर-किरण प्रचण्ड से गिरकर वहीं सड़ती।
पादप अनेक शुष्क पत्र दीन हीन-से
तेज से विहीन वेश में मलीन से,

कहीं किसी तरुवर की डाल हो विभंग,
रोक नहीं पाती थी पादप का अंग।
माँग रही तृण समूह से कहीं शरण,
किसका सिर चूम किसी के पकड़ चरण,

अण्डज पुरीष भरे पत्र थे सकल,
कर रहे शरीर किसी का कहीं धवल,
मकड़ी के जाल में कुछ मलिन वास से,
मुख ढाँपे दिख रहे विगतोल्लास से॥

वक-विक्रम देख देख दादुर के दल,
शीघ्र पलायन में वे हो रहे विफल।
कितने ही प्रस्तर के तल में खोकर,
उदर पूर्ति करते थे निश्छल होकर॥

वन्य महिष कहीं कहीं मिल दल के दल
करते वे पंकिल थे सरसी का जल।
जलज राशि कर्दम से हो करके लिप्त,
उनके पद तल में थे नीचे प्रक्षिप्त॥

अजगर कहीं अलस्त सा आहार आस में,
था काष्ठ सा पड़ा हुआ पानी के पास में।
उनके समीप ताकते मृग यूथ वे सरणी,
छिप चाट रहा था वही शर्दूल श्रक्वणी॥

देखा फिर उग्र घोर दाव का दहन,
धूम्र तिमिर फैल पूर्ण कर रहा गहन।
थी असंख्य शाखा में शिखि-शिखा प्रचण्ड,
नभ से मिलने को उठकर प्रखण्ड खण्ड॥

जलते पाटल समूह उठ रहे गगन,
धूम्र परिवहन बिराज कर रहे गमन।
बैठ दूर बृक्ष पर सम्वाद वे कहते,
और फिर विशेष ताप मे उन्हें दहते।।

और कभी पत्र उर्ध्व पथ में मलीन,
उड़कर नभ मंडल में हो रहे विलीन।
पक्षी उड़ भाग रहे कितने नभ में,
कितने थे जूझ रहे अनल गर्भ में।।

गज महिव शृगाल तथा मृग दल के दल,
भालू वराह शंशक वन्य पशु सकल।
धूम पटल मज्जित हो ताकते अनल,
किं कृतं विमूढ़ बने हो रहे विकल।।

भती भाव चकित चित्त सोर वानर,
भाग रहे डाल-डाल कूद कूद कर।
शावक ले पठी कहीं कोई कक्ष में;
धुँआधार दौड़ रहे सरित-लक्ष्य में।।

सरिता के श्रोत तथा सिकता के कूल,
भरते थे जीव जन्तु हो कर व्याकुल।
बोली गोदावरी कुछ देखा सुमने,
दण्डक का हाल जिसे छोड़ा तुमने।।

पर दुःख कातर सती करने लगी कथन,
क्रीड़ा का क्षेत्र हा! हा! दण्डक कानन।
सत्वर विधि करने से होती मैं धन्य,
शान्ति मुझे मिलती मम नेत्र-नीर-जन्य।।

नागरी अयोध्या वन के, सती को देख,
व्यस्त हुई पढ़ने में राज्यश्री का लेख।
शोक पूर्ण गद् गद् स्वर दुःख से विकृत,
लज्जा मय भाषा से ओष्ठ प्रकम्पित।।

"मैं निशि" सखी ! कौमुदी तू थी प्रभामई
कुमुद पुष्प मेरे दृग मूंद तू गई।
तेरे विन और नहीं मुझको सुख लेश,
घर के भूषा बिहीन नारी का वेश ।।

राजभवन आज स्वयं हो गया गहन,
तेरा-ही विरह वहाँ दाव का दहन।
हो प्रविष्ट वह समग्र कर रहा विनाश,
और क्या वचा कहीं सुरम्यता विलास ।।

पल्लवमय समुल्लास को जला रहा,
साधु हृदय अति विशाल वृक्ष से अहा।
हास से सुवासित जो सुमनों के वंश,
सहज वहां होते थे सारे बिध्वंश ।।

शान्ति हरिण यूथ और धैर्य के गयंन्द,
कर विषाद-धूम्र मध्य प्राण को अमन्द।
सहन शीलता-सरि के उर में जा कर,
मग्न हुए ग्रीवा तक प्राण वचा कर ।।

बलशाली श्वापद से दुष्ट के हृदय,
वचे नहीं निरापद वे भी निश्चय।
केवल श्रीराम हृदय सिन्धु सा अतल,
जिसमें निक्षिप्त पड़ा वह वड़वानल ।।

राहु-ग्रसित गात यथा हो निशिपतिका,
तेरे विन शेष मात्र वेश नृपति का।
भर गया अंधेरा मणियुक्त भवन में,
मेघ यथा तारा से पूर्ण गगन में ।।

सास सभी बैठी थीं हृदय शोक सिक्त,
शुष्क सलिल शून्य यथा सरसी हो रिक्त।
फणिनी प्राणधन है मणि जैसे,
उससे भी अधिक तुझे मानें तैसे ।।

बन्द हैं कपाट सब प्रमद उपवन में,
पड़ते है पुष्प नहीं किसी नयन में।
गन्ध-वणिक व्यथित हृदय उठे जा रहे,
च्युत प्रसून राशि कों वहीं सुखा रहे।

विटप वीथि वल्लियाँ भी हैं नहीं सुखी,
सोच सोच तुझको सब जातीं सूखी।
रम्य संगमरमर के पथ के ऊपर,
शुष्क पत्र गिर आसन करते उड़ कर।।

देवर निज प्रभु के आदेश को लिए,
हैं विपाद-पूर्ण विनत भाल वे किए।
मंत्र निहित-वीर्य यथा हो विषम भुजंग।
अथवा खर अकुश से भीत हो मतंग।।

वहिनों के कल कपोल युत गण्डस्थल,
निर्भर थे प्रश्रय पा हस्त के कमल।
दिन दिन होता जाता उनका तन क्षीण,
असित पक्ष चन्द्र के समान कान्ति हीन।।

मुख मुरज न धारण कर राग रंगिनी,
मूक हो गई स्वयं संगीत संगिनी।
मलिन कुसुम के समान दासी तेरी,
जी रहीं सव ओर गाढ़ दुख की ढ़ेरी।।

कर सकी न पत्र पाठ पूर्ण परवसी,
बैठ गई दुखित म्लान अवध-रूपसी।
सीता उसकी दशा निहार कृपा वश,
क्षोभ से संतप्त स्वयं हो गई विवश।।

हो आया अब तक था दिन का अवसान,
लौट पड़े अतिथि सभी निज निज स्थान।
ले सती को, तापसी नवीन रंग में,
निरत हो गई सभी अपने प्रसंग में।।

—०—

(नवम सर्ग)

गर्भ भार सीता का अब उत्तर-उत्तर
गुरुतम तक आगया लाँघ करके गुरुतर।
बैठ गई तो उठना हो जाता दुस्कर,
उठने से तन हो जाता दुर्वह दुखकर ॥

कहीं सती को इससे हो जाए न कष्ट,
वर्षा ने आ कर दिया ताप को ही विनष्ट,
अवसन्न क्षुब्ध प्राणों को ही देने को बल,
उठ रहे चतुर्दिक् से थे श्याम जलद पटल ॥

ऊपर से कर अवरोध दिबस पति का आतप,
था तान दिया घनश्याम रंग का चन्द्रातप।
फिर उस वितान की प्रभा तड़ित से झलकगई,
नयनों की पलकों में जगमग कर छलकगई ॥

सब दिगंगनाएँ साज नील नवबेणी,
मंडित करती जाती बक मुक्ता श्रेणी।
कर रत्नाकर से रत्न रेणु का उत्तोलन,
थे दिग्पालों ने साज दिये मधुरिम तोरण ॥

स्वार्थ वशीकृत लज्जा का तज कर घेरा,
वासव बोले यही शरासन है मेरा।।
वरुण नहीं सह सके कहा हो आतंकित,
रहे पास मेरे मम रत्नों से निर्मित।।

अन्य दिगीशों ने स्वधर्म महिमा पाली.
समय समय पर दोनों की कर दीपाली।।
सुता दुःख परिताप दग्ध अवनी के,
मस्तक पर वर्षा ने डाले छींटे।।

वन पर्वत सर सरिता कुछ भी नहीं रही
जिनके सिर से नहीं बारि की धार बही।।
तृण शश्यांकुर तथा कदम्बों का विकास,
हो रहा पुलक अवनी का ही ऐसे प्रकाश।।

वसुन्धरा का वक्ष हो गया था जलमय,
तमसा थी बह चली दाब कर कूल उभय।।
सीता को आसन्न प्रसविनी देख अहा,
उसके उर का मोद बाढ से उछल रहा।

हृदय वह्नि को छोड़ सभी पर्वत कानन,
तन मज्जित कर हुए तृप्त पुलकित आनन।।
कलित केतकी कंटक दुर्ग निवासिनी,
कंटक विग्रह से भी बनी सुहासिनी।।

बैदेही को व्यथित देख विपदा बन में,
बोली देवि, नहीं आकुल अपने मन में।।
कंटक वन में स्वयं शल्य से हूँ पीड़ित,
पर सुगन्ध के कारण ही जग में पूजित।।

दिव्य तापसी उपवन में बन तपस्विनी,
लोकपूज्या हो जाएगी मनस्विनी।।
और कर सकेगा क्या जग-लोचन-दूषण,
जब अपना गुण बनजाए देवी भूषण।।

आली ! कंटक देख न कोई करे प्रेम,
तो मैं क्यों छोड़ूं सुरभिगर्व का सहजनेम ।।
हुआ प्रस्फुटित चारु कृष्ण चूड़ा सुन्दर,
मन लोचन लोभित करता था रूप सुघर ।।

मधुऋतु से ही रजनी गन्धा वहाँ रही,
उसने वर्षा से सुमनों की बात कही ।।
कमला मल्ली तथा कुटज का रम्य विषय,
हुआ वहाँ पर वही प्रीतिदाता अतिशय ।।

रखे गये थे जो सयत्न नित रत्नमान,
पर कौन लांघ सकता है यह विधि का विधान ।।
रख न सकी वर्षा जिनको अनेन बल से,
तिनों ही ग्रस गये काल के कवल से ।।
सीता को भी ही गया इसी से ज्ञात वहीं,
आजीवन साधू कभी उपेक्षित रहे नहीं ।।
वार्षिक उत्सव हेतु कुसुम मण्डन तभी,
अनुष्ठान में निरत जुही की लता सभी ।।

अहा सत्य क्या सती चित्त मोदित करने,
हेतु मग्न थी सुरभि-सौध निर्मित करने ।।
घन नीले अम्बर वाली श्रावण-रजनी,
गेह गुच्छ कर से सिर पर गन्धा रजनी ।।

हो कर सती खड़ी कुटीर के प्रांगण में,
रहे उजागर सदा वेदना वारण में ।।
बैदेही के प्रसव काल सब लक्षण,
होने लगे प्रकाशित थे आकर क्षण क्षण ।।

लिए कष्ट दादुर बैदेही का विकट,
चिल्लाते थे अति आर्त स्वर से निकट ।।
सती तृषा को चातक लेकर गगन में,
जल हितार्थ भिक्षाटन करता था घन में ।।

वृद्ध तापसी एक सतीं के सन्निधान में,
व्यस्त हुई उपयुक्त काल के ही विधान में ।।
रजनी में ही लगे निशापति की द्युतिहर,
जनमे वैदेही ने थे शुभ यमज कुँवर ।।

तेज कुमारों का मिलकर विद्युत सहित,
दशों दिशाओं को करता था आलोकित ।।
हर्षित हो कर सुरेन्द्र ने की तोपध्वनि,
सब अजान बन बोल उठे है तीव्र अशनि ।।

दिगंगनाओं की मंगल ध्वनि संग में,
घन-गर्जन मिल गया उसी के रंग में ।।
गिरि कानन हो गये विमुक्त कुसुम वर्षी;
झूम झूम कर नीचे क्षेत्र सरित सरसी ।।

दर्शन लोलुप सती-कुमारौं के लिए,
खसित हो गये मेघधार का रूप लिए ।।
हृकय दर्शनों का लोभी उद्वेग से,
नदी कूल ऊपर उठ आए वेग से ।।

छोड छोड़ कर जलनिधि को सब मीन गण
सरिता के संघ नाच नाच करतीं विचरण ।
हृद में सर में और क्षेत्र के जल में भी,
उठ हर्षित मछलियाँ नृत्यरत हुई सभी ।।

सबको पीछे छोड दर्शनाकुल विभोर,
केऊँ मछली चढ गई ताल-तरु-चूल छोर,
वाल्मीकि ऋषि तभी आ गये उसी समय,
लगे देखने प्रेम समेत कुमार उभय ।।

सोच रहे गुरु शुक्र रुप मानो ग्रहद्वय,
एकत्रित हो आश्रय नभमें हुए उदय ।।
लगता था महर्षि का उर जैसे प्रभात,
बह रही जहाँ आनन्द-कुसुम की सुरभि वात ।।

मुनिवर ने निज हाथों में कुश ले लिए,
मंत्रित कर युग खण्ड वहीं पर कर दिए ।।
अनुकम्पा को गोद उन्हें करके अर्पण,
बोले करदो शिशुओं का इससे मार्जन ।।

अग्रभाग ले अग्रज तन धोकर सहला दो,
और अनुज को अधोभाग द्वारा नहला दो ।।
अनुकम्पा ने मुनि आज्ञा अनुसार तभी,
भूतनाशिनी रक्षा के कर योग सभी ।।

कुश-लव द्वारा किए गए सम्मार्जित तन,
शान धरे हों जैसे उज्वल चारु रतन ।।
दीपित हो जाती वह्नि यथा तृणराजि युक्त,
अथवा बाल.रुण लगता सागर-बीचि मुक्त ।।

जब निरख रही थी बैदेही शिशुओं के मुख,
आ गया हृदय में एक साथ सुख के संग दुख ।।
सुख बोल उठा ये सूर्य और शशि से मनहर,
जिसने भी धारण किए गर्भ मे यमज कुँवर ।।

वह धन्य धन्य हो गई अरे शतबार धन्य,
है परम भाग्यशीला जगमें इससे ना अन्य ।।
बोल पड़ा दुख तभी अरे ! ये कुँवर उभय,
शोभित करते यदि मणिमय राजेन्द्र निलय ।।

राज हृदय पुलकित आनन्दित हो जाता,
दुख दारिद दीनों का खण्डित हो जात ।।
कितना ही धन रत्न वस्त्र युत आभूषण,
पाकर होते धन्य आज पुर वासी जन ।

और नगर भर जाता मंगल नाद से,
नभ भर जाता मुदमय मंगल वाद्य से ।।
भाग्य दोष से वने अहा तापसी तनय,
ग्रहण किया आश्रय तापस-आलय मुदमय ।।

सती नेत्र से दो धारें जल की लेकर,
चला गया युग शिशुओं का स्नेह दे कर ।।
युग नवजातों के रूपों में सती हृदय,
वहीं हो गया अति विशुद्ध स्नेहिल सुखमय ।।

लगे कुमारों को केवल देखने नयन,
छोड़ उन्हें अन्यत्र नहीं जाता था मन ।।
जननी के नेत्रों का उज्ज्वल स्नेह रंग,
रंजित करता था बार बार नवजात अंग ।।

उन नेत्रों में वह प्रतीति लाया ऐसे,
सत्य उदित हो हों रवि शशि जैसे ।।
मन में स्थापित किया मोदमय सिंहासन,
स्वयं वहाँ हो गया प्रकाशित सार्वभौमपन ।।

नाभिच्छेदन युगल कुमारों का सत्वर,
अनुकम्पा ने किया पूर्ण हर्षित होकर ।।
अभिमंत्रित जल लेकर करवाये स्नान,
सम्पूर्ण किए इस भाँति सकल पावन विधान ।।

उन सुकुमारों को निरख रहा तपसी मंडल,
गद्-गद् आनन्दित हो करता था कोलाहल ।।
दल के दल आकर मुनिकुमार नर्तन करते,
हर्षातिरेक से राम नाम कीर्तन करते ।।

दुर्धर्ष और दुर्जय लवणासुर असुर क्रूर,
उसका मद मर्दन करने को शत्रुघ्न शूर ।
जाते उस पथ से उसी रात्रि दैवी क्रम में,
रुक गये वहीं थे वाल्मीकि के आश्रम में ।।

उस आश्रम के हर्षनाद के ही मद में,
डूब गये सम्पूर्ण स्वयं आनन्द नद में ।।
वैदेही की श्लाघा में वाणी पुलकी,
माता ! तू है परम पावनी रघुकुल की ।।

तेरी जननी भी सर्वसहा है वैसी,
हो तदनुरुप तुम भी निजमाता जैसी।
जो रत्न गर्भ में धारण कर रक्खा महान,
बस एक मात्र उससे ही हम सब भाग्यवान ।।

दे दिया रत्न जो रघुकुल को तुमने विराट,
उससे शोभित होगा कौशल श्री का ललाट ।।
मुनिसुकुमारों के मुदमय कोलाहल में,
साथ दे रहे थे खग मृग दल के दल में ।।

अति स्तीर्ण भीमा श्रावण की निशि भी,
शेष हो गई थी मुहूर्त की भाँति तभी।
लवण-विमर्दन हेतु सुमित्रा के नन्दन,
हुए अग्रसर यात्रा को कर मुनि वन्दन ।।

वन बासी जन को देने को धन-माया,
स्वाभाविक बैदेही के मन में आया।
सीता-मन अनुकूल कहाँ था धन सही,
क्योंकि स्वयं वह वन में आकर बस रही ।।

सोच रही चन्द्रिका करे संतुष्ट जगत,
किन्तु हो गये घन मंडल में घन उपगत।
बैदेही जब आई तज आनन्द-सदन,
सोचा था मन में जब छोड़ूगी कानन ।।

मुनिकुमारियों के निमित्त कुछ अलंकार,
लाई थी संग में अति सुन्दर वस्त्रोपहार।
हो कर विनम्र लज्जा से वह अर्पण करती,
तापस तापसियों का मन तोषित करती ।।

हृदय सिन्धु उनके मानो पाकर निशिकर,
आन्दोलित हो उठा पूर्ण आनन्द-लहर।
संचित थे नीवार और फल सन्निधान,
मृग और विहंगों को करती थी सम्प्रदान ।।

अपनी अपनी ओर खींच कर मृग खाते,
दाब चोंच में कितने ही खग उड़ जाते।
नीड़ों में शावक बैठे मुख फैला कर,
जननी ने आहार दिया जिनको ला कर॥

मोर मयूरी मिलकर हर्षित रव करते
पादप के ऊपर रच रंच ताण्डव करते।
कर रही द्वीप द्वीपों में थी कोकिल प्रचार,
जा जा कर कहती फिरती थी शुभ समाचार॥

देने को गिरि कैलाश सुखद यह सुसंवाद,
था राजहंस उड़ चला मचाता हर्षनाद।
गौरी को यह विश्वास दिलाने को मराल,
लेकर जाता था पत्र रूप में ही मृणाल॥

शुभ समाचार से मनही मन पुलकित हो कर,
शिव की अनुमति ले तज करके कैलाश शिखर।
लेने को पूजा बैदेही के हाथ से,
रख गिरिजा षष्ठी रूप गगन के पाथ से॥

कादम्बिनी संग छल से घन ज्योति विरल,
थी बाल्मीकि आश्रम में आ पहुँची चंचल।
सप्त मुनि-सुता के शरीर में रूप अदृश्,
आन विराजी स्वयं सप्तमात्रिका सदृश॥

सती हाथ से छठे दिवस पूजा लेकर
मिटा कष्ट वर भुजा गई हरि बल-देकर।
क्रम से बीते सुखद एक विंशात् वासर,
नाम करण का दिव्य आ गया शुभ अवसर॥

बैदेही के युगल कुमारों के सुनाम,
मनने को आये अमर त्याग कर स्वर्गधाम॥
देख देवियों का मण्डल यह कौतूहल,
लगा दौडने उनके पीछे दल का दल॥

शरदागम की शुभ वेला दौड़ रहे,
नीरद आतुर हो नभ में पथ छोड़ रहे।।
दिनकर किरणों सहित सहज ही उस पथ से,
सब के सब आ गये वहाँ ज्योतित रथ से।।

आश्रम में आ गए कुसुम दल के ऊपर,
धारण कर सौरभ स्वरूप लगते मनहर।।
दिखा दिव्य सौन्दर्य वहीं पर बैठ गए,
मुसकाते प्रस्फुटन व्याज से नए नए।।

कुछ उनमें पाकर तापस-तापसी-हृदय,
वहीं समाहित हुए प्रेम से हो मुदमय।
वाल्मीकि निर्देश प्राप्त कर तपसी जन,
चले गये उपवन में द्विगुणित प्रमुदित मन।।

नव पल्लव प्रसून लाकर सब संग संग,
निर्मित कर मण्डप साज रहे मंजुल सु-रंग।
जगमग आश्रम हुआ निशा में प्रथम प्रहर,
मनोहारिणी दीप मालिका उठी छहर।।

दीप प्रचुर इंगुदी तेल से पूर्ण किए,
जिन्हे जला कर तपसी हाथोंहाथ लिए।
पुष्पित तरु वल्लरी चतुर्दिक् थे मनहर,
हँस उठते थे पा करके आलोक-लहर।।

उसी समय में यह सुमनों का पर्व था,
बढ़ा रहा रजनी गंधा का गर्व था।।
लगता था सागर मज्जन क्षीरार्णव,
देव गणों में शोभित हो जैसे वासव।।

हिमगिरि उच्च शृंग पर ज्यों गौरी शंकर,
मुनि समूह राजित ऋषि मण्डप-आसन पर।
सचमुच ही अश्विनीकुमार सदृश मुदमय,
कर कमजों में ले कर के सुकुमार उभय।।

मंडप में आगई सती अनुकम्पा भी,
हुई गर्व से शोभा ही साकार तभी।
कृष्ण त्रयोदशी निशिकर के पास में,
प्रात तारिका उदित हुई आकाश में।।

ले उसका प्रतिविम्ब सरोवर गर्भ से,
मानों प्राची दिशा भरीं हो गर्व से।।
सरल हृदय की सभी प्रसन्न वदन वाली,
सती सहचरी कन्याएँ उपवन वाली।।

सतीदत्त उपकरणों से सब साज अंग,
सीता समीप ही बैठ गई सब संग संग।
ऊषा के द्वारा प्रदत्त पा नई किरण,
लगता जैसे उसके संग कमलिनी वन।।

वेद विहिन हो गया देवता का अर्चन,
भरा शंख शृंगी निनाद का घनगर्जन।
दे अग्रज कुमार को मंगल शुभाशीष,
हो कर प्रसन्न फिर बोल उठे मुनि कुलाधीश।।

मार्जित कुशाग्र से नाम इसी से होगा 'कुश,'
अनुरूप नाम के होगा रिपु-करीन्द्र-अंकुश।
फिर उसी भाँति छोटे कुमार के हुए काम,
मुनि मनीष पुंगव ने उसका 'लव' दिया नाम।।

मुनिगण मिल करते रामराम की ध्वनि अभंग,
खंजड़ी मजीरे साथ बजा करके मृदंग।
तापस कुमारियाँ बजा रहीं वीणा मनहर,
गा रहीं सुधा से पूर्ण मधुर संगीत सुघर।।

सौरभ स्वरूपिणी स्वर्ग देवियाँ तथा अमर,
नर्तन में रत फिर रहे वहाँ प्रमुदित होकर।
जुट कर चारों ओर हरिण हरिणी के गन,
ताक रहे उस ओर मुग्ध हो चकित नयन।।

आश्रम की चुलबुल में अति आनन्दमान
दे रहा प्रतिध्वनि से छल से बस योगदान।
संगीत निरत तरु लता वृन्द सब प्रमुदित से,
विद्याधर विद्याधरी बन गए गर्वित से॥

भरा पूर्ण उज्ज्वलता से आश्रम समुद,
किन्तु लगा तम पूर्ण सती का बदन कुमुद।
बचा रहा बस एक मात्र बिन राम चन्द्रमा,
एकमेव है अन्धकार का पर्द अमा॥

तम ने उसकी महिमा बढ़वाउ आकर,
तन के कारण हुआ चन्द्रिका का आदर॥
दिखते थे युग बालक रत्न सदृश् सुन्दर,
गिरि तल में ज्यों रत्नों की गंभीर कंदर॥

देव और ऋषियों ने सीता का गौरव,
बढ़ा दिया करके विधि से आनन्दोत्सव।
महत् जनों की ऐसी प्राकृतिक रीति,
सम्मान पात्र को देने में ही उन्हें प्रीति॥

और शेष में शिशुओं को सुख कामना,
साथ, आशिषें देते थे मुनि महामना॥
मुनिजन उर-सरसिज में ही करके आसन,
देव "तथास्तु" शब्द करते थे संभाषण॥

वन के तरु लता धीर घोष में तभी,
मिल "तथास्तु" मुदमय थे उच्चारते सभी॥
दश दिगपाल दिगन्तों में थे ड़ोलते,
और "तथास्तु" शब्द उच्चस्वर बोलते॥

—•—

(दशम सर्ग)

सती ने पाए थे दो रत्न,
प्राण से अधिक कर रही यत्न ।।
लगा लालन पालन में मन,
हो गया - सदृढ़ स्नेह बन्धन ।।
छोड़ती साथ नहीं पल का,
भार जीवन का था हल्का ।।
स्नान की वेला जब आती,
छोड़ कर एक बार जाती ।।
वसन गीले ही ले तन पर,
दौड़ कर आ जाती सत्वर ।।
प्राण हो जाते थे चंचल,
देखने को सुत-वदन–कमल ।।
गर्व शशि का करके मर्दन,
हो रहे थे शिशु–तन वर्धन ।।
सुधाकर जैसे पूर्ण वदन,
वढ़ रहे नित सौन्दर्य सदन ।।

देख करके जननी का मुख,
गोद को हो जाते उन्मुख ।।
देख हँसते थे मातृवदन,
गोद हित करते थे क्रन्दन ।।
स्नेह से माँ गोद लेती,
झूला आनन्द—दोल देती ।।
निरख मुख बार बार लेते,
हँसा कर स्वयं विहँस देते ।।
सती को न था स्वप्न में भास,
दग्ध मुख से फूटेगा हास ।।
पूर्ण सुख का अपूर्व था हास,
स्वतः आ करके करे प्रकाश ।।
न उसमें पति ले पाए भाग,
नित्य निन्दा करती निज भाग ।।
कमल मुख मध्य रदन का छल,
राजती गिरा परम उज्ज्वल ।।
खोल निज नैसर्गिक ज्योती,
निन्दय कुन्देंदु धौत मोती ।।
आद्य वीणा बजती मृदु सी,
मधुर स्वर 'माँ' गुँजित मधु सी ।।
वही स्वर्गीय मलय की धुन,
पल्लवित करे मातृ-जीवन ।।
वर्ण पाटल प्रवाल सत्वर,
फूटता ओंठों अधरों पर ।।
वहीं से दन्त कुसुम कढ़ कर,
कौमुदी कान्ति उठी बढ़ कर ।।
भास्कर जैसा भास्वर मन,
प्राप्त कर प्राची इन्द्रासन ।।

अग्रसर से कुबेर का कोष,
प्रभावित कर मुख देती तोष ॥
मानती जग को निजकर गत,
भाग्य सुख दोनों समुपागत ॥
अर्ध विकसित सरसिज सानी,
बोलते शिशु तुतली बानी ॥
भारती हाव चारु चितवन,
वेश मनहर लावण्य ठवन ॥
देख कर प्राण पुलक जमता,
नाचती उर पुर में ममता ॥
उमय शिशु फिर अवनीतल पर,
सरकते घुटनों करतल पर ॥
दूर से समुद बुलाती सती,
बढ़ाती वही शक्तिमय गती ॥
कुँवर कौतूहल पूर्ण सुहास,
वेग से आते जननी पास ॥
कभी कर में मिट्टी धरते,
जीभ अपनी पंकिल करते ॥
कभी देती माँ सुन्दर फल,
फेंकते हिला बदन मंडल ॥
चूर्ण कुंतल सुन्दर हिलते,
कंज से जैसे अलि मिलते ॥
खड़े हो गए मातृ-कर धर,
स्वयँ को कर पद पर निर्भर ॥
पकड़ कर करते थे संचरण,
उठा कर धीरे धीरे चरण ॥
जभी गिरते करते रोदन,
शान्त करती माँ चूम वदन ॥

वुलाले दोनों वन्य बिहंग,
देखते कौतूहल से रंग ॥
मोर पंखो में दृग अड़ते,
पकड़ने उन्हें दौड़ पड़ते ॥
खेलते मृग-शावक लेकर,
कुसुम रचना तन को देकर ॥
तापसी तापस मुद मन में,
कुमारों संग फिरते बन में ॥
सजा सुमनावलि शीश कपोल,
झुलाते पुष्पित लतिका-दोल ॥
प्रस्फुटित शिशुओं में सुख कली,
और हठ करने की धुन चली ॥
कुमारों के तन उज्वल श्याम,
सुमन झूलों में दृग अभिराम ॥
लौंग वनलक्ष्मी की सुन्दर,
लाड़ से स्वर्ण विमंडित कर ॥
हिल तरु शाखा जिसके संग,
इतर शोभा हँस भ्रू भंग ॥
पंच सम्बत् हरि विक्रम से,
साज शिशु वित गए क्रम से ॥
कुँवर करते स्वच्छन्द भ्रमण,
सरित शाद्व उद्यान विजन ॥
वन्यपशु की आपद् किंचित।
न गिनता उनका निर्भय चित ॥
यमज का चूड़ाकर्म सन्निधि।
सु-कृत वाल्मीकि ज्ञान-वारिधि ॥
सुदुर्गम बीच ज्ञान-कानन।
आन छोड़े युग पंचानन ॥

संचरण करके वे सुकुमार ।
करें अज्ञान-गजेन्द्र संहार ॥
रत्न रस काव्य शिखर अभिराम ।
विराजित जहाँ केशरी राम ॥
और रावण-गज-रक्तिम धार ।
झर रही जहाँ निर्झराकार ॥
सिंहिनीं कन्दर में रोती ।
दंत-आघात दुखी होती ॥
कुमारों को उस गिरिवर पर ।
चढ़ा कौशल से ऋषि शेखर ॥
खिलाते मृग शावक से मान ।
खेलते वे शार्दूल समान ॥
राम को ही मृगेन्द्र सा मान ।
न जाने जनक सिंह-संतान ॥
करें माँ के समीप गायन ।
महाऋषि-निर्मित रामायन ॥
तान स्वर में लयबीनें बजा ।
राम-भक्ति रस से मन भिजा ॥
हिला देते थे लोचन शिर ।
प्रेम लहरों में हो अस्थिर ॥
तरज गर्जन रोदन शुभ हास ।
हो रहे गाँते समय प्रकाश ॥
वक्ष पुलकित हो बाहु युगल ।
वेग से बहता लोचन--जल ॥
प्राण में वाक्य भाव बनतड़ित ।
हो रहे थे प्रगाढ़ से जड़ित ॥
नव्य भारती बाल रस सनी ।
निर्मला मंजुल मूरति बनी ॥

विरच कर मधुर विचित्र हुलास।
कर रहे ये वितरित उल्लास।।
वही वन करके मेघाकार।
प्राण सिंचित करती रसधार।।
जानकी संग तापसी दल।
पान–रत गीतामृत निर्मल।।
हर्ष अवसाद शान्ति सन्ताप।
प्राप्त करती सुख दुःख अमाप।।
क्षोभ से हृदय हो गया द्रवित।
नयन से अश्रु हो रहे श्रवित।।
सती जो चरित–नायिका बनी।
राम के हृदय-हार की मनी।।
रही सुकुमार गर्भ धारिणी।
जन्हुजा-तीर विजन चारिणी।।
समझ पाये यह नहीं कुमार।
छिपाया था ऋषि ने सबसार।।
राम सीता गुण गौरव मान।
अति कौतूहल से करते गान।।
सुन सतीमणी होती लज्जित।
कर रहे सुख से मन मज्जित।।
आत्म गोपन सतर्क करती।
तापसी सदृश् समय हरती।।
रम्य रामायण करते श्रवण।
मुग्ध मृग वृन्द लगाकर श्रवण।।
नयन निश्चल लगते जड़वत।
भोग आहार तृषा विस्मृत।।
विहंग के बृन्द हुए नीरव।
हृदय में भरते श्रवण–विभव।।

वृक्ष पल्लव कुन्तल कवरी।
सुमन अबली जिसमें छहरी॥
गान में झूम उठे हो मस्त।
हिला अभिनीत वल्लरी–हस्त॥

मोह से गढ़ जाती तमसा।
मोद प्लावित हो कर विवसा॥
भूमि-उर में बहता अमृत।
कर रहा धन्यवाद में नृत्य॥

चतुर्दिग के वनवासी तभी।
मग्न थे सुधा–श्रोत में सभी॥
अनगिनत पूर्ण कर्ण कुहरी।
श्रोत से प्लावित अमर पुरी॥

इन्द्र ब्रहमा शिव सुन वह गान।
कर रहे धन्यवाद का दान॥
पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणी।
नाच उठती दिक् सामन्तिनी॥

धूल धूसरित गान का गर्व।
अप्सरा नाची ले गन्धर्व॥
लोक से लोकदेव ऋषि घूम।
गान करते सुकण्ठ से झूम॥
आदि कवि के सुकाव्य रस की।
प्रशंसा राम सीय-यश की॥
गीत उनके पियूष झरते।
कुँवर वीणा के स्वर भरते॥
कि जिनकी वीणा विश्वविदित।
बाल वीणा से हो प्रमुदित॥
प्रश्न पर कहते अति उत्तम।
धन्य हैं वे ही मुनि सत्तम॥

पर प्रशंसा मुद मय गाते ।
तथा निज कीर्ति बढ़ा पाते ।।
स्वगुण रहने पर भी पर गुण ।
प्रशंसा में जो हुए निपुण ।।
स्वगुण-तरु में जब फल फलते ।
धर्नुगुण से ही शर चलते ।।
पवन ढोकर प्रसून का वास ।
जगत को देती अति उल्लास ।।
कुमारों के एकादश वर्ष ।
हुए पारित उपनयन सहर्ष ।।
वहीं प्रारम्भ वेद अध्ययन ।
प्राप्त कर लिए ज्ञान के नयन ।।
सुअन वेदज्ञ प्रभा छाई ।
देख सीता दुख तज पाई ।।
भानु तनया के जल में अरुण ।
किरण से लगते नूतन तरुण ।।
मनहरण छवि ले करके वरुण ।
कोष से रश्मि रतन का ऋण ।।
कुमारों के युग श्याम शरीर ।
रचित अद्भुत कौशल से धीर ।।
ज्ञान मार्जित भाषा उनकी ।
पूत कारी उर कानन की ।।
रहे व्यवहार सदा तद्रूप ।
चरित में था अमरत्व अनूप ।।
दीप्त मन वचन तथा सब अंग ।
सजे जीवन में प्रभातरंग ।।
जननि जीवन में सुख-आलोक ।
भर रहा पुत्र पठित श्लोक ।।

और अधिकाधिक मन हरणी ।
हो रही शोक स्मृति रजनी ।।
दुखी को समझाती सुख मूल्य ।
चिर सुखी का सुख वहाँ अतुल्य ।।
कुमारों के नव पुलकित रूप ।
जननि नेत्रों में रत्न स्तूप ।।
प्रशंसा सुत की माता-श्रवण ।
बीच करती शत सुधा झरण ।।
वहाँ स्वामी की यश-श्रेणी।
नसेनी सती स्वर्ग देनी ।।
जहाँ सुत तज कर जननी अंक ।
विचरने लगे वने निःशंक ।।
तभी से सीता तप मय व्रत ।
अनुष्ठित करने लगी सतत ।।
प्रभु पदों में अर्पित कर मन ।
लगी करने व्यतीत जीवन ।।
ग्रीष्म सरिता के श्रोत-सदृश ।
हो रहे प्राण सती के कृश ।।
निशाकर कृष्णपक्ष का यथा ।
लक्ष्य थी मृत्यु अमा निशि तथा ।।
मान निज प्रभु को दिनकर सम ।
आश करती स्वामी संगम ।।
सोचती किसी भाँति भी कभी ।
देख पाती पद पावन तभी ।।
समर्पित कर अपने युग वीर ।
छोड़ देती यह क्षणिक शरीर ।।
प्राण का मृग जा कर सत्वर ।
मुक्ति वन में करता निज घर ।।

(एकादश सर्ग)

वसुन्धरा की प्रदक्षिणा से, क्षीण तेज वपु क्लान्त।
श्रमित अतीव व्यथित हो करके, एक दिवस दिन कान्त॥
प्रबल लालसा उर में लेकर, डूब गए दिनमान।
पश्चिम सागर नील सलिल में, करने की स्नान॥
हो कर दीन अधिक वियुक्त, निज प्रिय के बिन।
रह न सका पल मात्र, हो गया अनुगत दिन॥
दशा न जान सकी, पत्नी को पति हीना।
वास न पाई छोड़, पद्म—वाला दीना॥
क्षण में उसका लूट पाट कर, रंग वास का कोष।
बिखरा दिया गगन मंड़ल में, निशि ने सुभग प्रदोष॥
अवलोकन कर सुकुमारी, नलिनी का यह अपमान।
बिटप सिरीष निपट लज्जा से, पूर्ण हुआ म्रियमाण॥
सूर्य अस्त होने पर करके, अग्निहोत्र आराधन।
स्मरण कर रहे ईश-कृपा को, थे मुनि महा तपोधन॥
बैठ गए थे विछा कुशासन, आश्रम के प्रांगण में।
सोच रहे थे राम सुशासन, विषय शान्ति से मन में॥

साथ साथ में सुकुमारों की, ज्ञान विज्ञता अतिशय।
फिर होगा किस भाँति पुत्र के, साथ पिता का परिचय।।

राजधर्म के साथ धनुर्विद्या, शिक्षा के द्वारे।
खड़े हो गए आकर के, सुकुमार युगल सुत प्यारे।।

तपस्वियों के संग संग, यदि वन में रह जाएँगे।
जीवन के अनमोल रत्न क्षण, यों ही ढेह जाएँगे।।

राज पुत्र हो राजधर्म में, यदि ये निपुण नहीं होंगे।
निष्फल तरु की भाँति व्यर्थ ही, इनके सब सद्गुण होंगे।।

वीर पुत्र ही यदि न प्राप्त कर, सके वीरता का भूषण।
वीर वंश के लिए रहेगा, यह अत्यन्त दुसह दूषण।।

कौन कहे कब अवध, राज का सिंहासन
लगे खोजने राघव के, दायाद रतन।।

तब तो फिर उस समय राज का, मान तथा रक्षण क्षमता।
अनुपस्थिति में फूट उठेगी, नित्य नवीन नराधमता।।

रहा न यदि आदर्श वहाँ, फिर कैसे होगी पूर्ण कुशल।
यदि काननचारी बनकर, रह जाएँगे सुकुमार युगल।।

दानवीर होते विशेष, आये रघुवंश वीर।
वह आदर्श पूर्ण होगा कब, रह कर साधु कुटीर।।

राम रूप प्रतिबिम्ब सदृश, थे लगते अविकल।
अवयव सुदृढ़ धरे थे, वे सुकुमार युगल।।

निरख राम पहचान, सकेंगे निज नन्दन।
रिपु सूदन कर देंगे, सब भ्रम का खण्डन।।

सुकुमारों को ला देने पर, करें ग्रहण।
तो फिर मेरा नहीं रहेगा, कुछ गर्हण।।

किन्तु उन्होने एकमात्र, निन्दा डर से।
पतिव्रता जानते हुए, निष्ठुर उर से।।

दोहदिनी दयिता, को वन में भेज दिया।
दोहद पूरण का छल, उनके साथ किया।।

बारह वर्ष बीत जाने, पर सुत ममता।
उपज न पाई उनके, उर में सम्भवता ॥
प्रकृति करों में पुत्र प्रेम को अर्पण कर।
निश्चय उसकी सम्मति, अब लेंगे नर वर ॥
नही आस्था निज विश्वासों पर जिसकी।
हम हजार समझावें, माने क्यों किसकी ?
इसी विषय पर लक्ष्मण और वशिष्ठ सहित।
आवश्यक है परामर्श उपचार विहित ॥
इसी समय कर जोड़ राज का दूत प्रवर।
मुनि-कर में दे दिया पत्र प्रणमित हो कर॥
पढ़ कर ऋषि हो गए परिस्थिति मे अवगत।
आविष्कृत हो गया अरे यह वांछित पथ ॥
महाराज कौशल नरेन्द्र का आमंत्रण।
अश्वमेघ का अनुष्ठान ही था कारण ॥
सोच रहे मुनिराज कि विधि अनुकूल हुआ।
भाव जलधि के पास दृष्टिगत कूल हुआ ॥
यज्ञ देखने मुनि-कुमार का वेश किए।
जाऊँगा निज शिष्य रूप में यमज लिए ॥
लव कुश यज्ञस्थल में जाकर स्थान स्थान।
करते घूमेंगे नव रामायण काव्य गान ॥
इस राम कथा से करके प्रीति-सुधा वर्षण।
निश्चय ही कर लेंगे वे जनमन आकर्षण ॥
दृष्टि पड़ेगी राम सदृश छवि लोचन में।
राघव--तनय--विषय सव सोचेंगे मन में ॥
बिम्ब रूप में राम देख अपना स्वरूप।
निज हृदय डुबा देंगे हर्षित पा सुधा कूप ॥
सुकुमार ग्रहण में होंगे जब राघव कुंठित।
तो क्या कौशल्या होंगी नहीं अवनि लुंठित ॥

रावण कर पाया नहीं जानकी को स्पर्श ।
रामायण में सुन सबको होगा प्राप्त हर्ष ।।
अनल परीक्षित हुई जानकी थी वन में ।
सुनकर किसको नहीं व्यथा होगी तन में ।।

रामायण जब खोलेगी यह सुभारती आलोक ।
तब निन्दा–तम छोड़ चला जाएगा तीनों लोक ।।

इसी भाँति थे सोच रहे मन में मुनिवर ।
भरे अतीव हर्ष से थे प्रफुल्ल अन्तर ।।

दे विश्राम निदेश दूत को वचन मधुर ।
लगा शिष्य मण्डली वार्ता हेतु सुधर ।।

× × × × ×

सीता के समीप जा पहुँचे हर्षित हो करके मुनिवर ।
लगे सुनाने अश्वमेघ मख की अति सुखदायिनी खबर ।।

कौशलेश का दूत अभी आया है लेकर आमंत्रण ।
शिष्य वृन्द के संग हमें कल करना होगा शीघ्र गमन ।।

शिष्य रूप में लव–कुश दोनों साथ हमारे जाएँगे ।
अगणित मुनिजन के दर्शन आशिष मनोरम पाएँगे ।।

वैदेही ने किए समर्थन मुनिवर के प्रस्ताव सभी ।
भार कुमारों का प्रगाढ़तर सौंप दिया सब भाँति तभी ।।

× × × × ×

बोल उठे तब शिष्य मंडली से ऋषिवर ।
अश्वमेघ देखने चलें निशि जाने पर ।।

साथ साथ लव–कुश के सहपाठी सकल ।
सज लेना सब भली भाँति पाथेय विमल ।।

बेटा लव–कुश तुम वीणा धारण करके ।
शिक्षा सफल बनाना गीत सुना करके ।।

जौन राम रामायण कविता के नायक ।
बने तुम्हारे अन्तर के भी मुद दायक ।।

वही राम कर रहे आज यह महा याग।
आयेंगे देश विदेशों से बहु महाभाग॥
पहुँचेंगे वहाँ विभीषण लंका अलंकार।
असुरों के दल के दल समेत कर सिंधु पार॥
अंगदादि सब प्रमुख भालु सुन्दर कपिगन।
आयेंगे सुग्रीव सहित हर्षित आनन॥
जो सदा मानते रहे लोष्ठ सम सानुमान।
बिक्रम शाली वर वीर अपरिमित हनूमान॥
मुदित हृदय से लेकर सीता—दत्त हार।
पंचानन सदृश वहाँ करते होंगे विहार॥
विविधि पंख की माल साज कर निज तन पर।
आए होंगे गुह समेत अनगिनत शवर॥
दुर्लभ राज्यश्री स्नेह का आलिंगन;
भ्रातृभक्ति बल से जिसका कर उल्लंघन॥
अग्रज की पादुका बिठा सिंहासन पर।
चौदह वर्ष बिताए फल मूलाशन पर॥
जीवन उन्नत किया बाँध कर जटा जूट।
हो ऊर्ध्व मुखी देखता जिसे हिम अचल कूट॥
वही भरत होंगे श्री राम अनुसरण में।
कीर्ति कौमुदी धरे चन्द्र से गगन में॥
निरख सकोगे क्षण जन्मा सौमित्र वहीं।
जिसके सदृश धरा पर कोई वीर नहीं॥
जिसके भय से सदा वज्रधर विचलित था।
उसका मद भी जिससे पद से रौंदित था॥
मेघनाद वध वार्ता होकर काल अनल।
रावण उर में घुसी, जल उठी ज्वला प्रबल॥

फिर संग संग बल की आहुति करके प्रदान ।
हो गया उग्रतर अधिकाधिक राक्षस प्रधान ।।

करके प्रदीप्त वह शक्ति ताप उत्तप्त घोर ।
क्रोधित होकर निक्षेपित की सौमित्र ओर ।।

शक्तिपात से आहत तीव्रव्यथा लक्ष्मण ।
वक्ष पृष्ठ क्षत पूर्ण सार्थनामा लक्ष्मण ।।

देखा अक्षर में उसे चक्षु से लख प्रत्यक्ष ।
गा करके मंजु कथा सबकी सबके समक्ष ।।

संगीत सुनेंगे मिलकर के शत शत नृप गण ।
तप प्रभापूर्ण तन धारण कर शत शत मुनिजन ।।

कोई पूछे वहाँ तुम्हरा यदि परिचय ।
कह देना "वाल्मीकि शिष्य हम वन्धु उभय" ।।

आज्ञा पाकर महाराज राम की उसे मान ।
करना उनके सन्मुख रामायण मंजु गान ।।

परिचय पूछेंगे जब भर कर के कौतूहल ।
कह देना "वाल्मीकि–शिष्य हम वन्धु युगल ।।

धन देने पर लोभ त्याग करके कहना ।
धन लेकर क्या करें तपोवन में रहना ।।

मुनि मुख से सुन अश्वमेध की सकल कथा ।
वैदेही उर में आकस्मिक हुई व्यथा ।।

लगी सोचने निश्चित रघुकुल चूड़ामणि ।
आन अंक बैठाई होगी अन्य रमणि ।।

भाग्यवती वह धन्य फल गया तप–पादप ।
सगर वंश हित सिन्धु सदृश फलशीतातप ।।

कौन तपस्या घोर कहाँ की बहुतेरी ।
जिसे जानने को इच्छा होती मेरी ।।

कोई कह देगा यदि उस तप का नियम ।
करूँ तपस्या निश्चय ही उससे गुरुतम ।।

ज्ञात किसे है ? पूर्ण तपस्या का विवरण ।
होंगे बिज्ञ अवश्य वशिष्ठ आदि ऋषिगण ॥

यदि नहीं और कैसे वन राज्ञी मनोनीत ।
उसके मत से रघुनन्दन होंगे सुपरिणीत ॥

लाऊँ प्रयत्न से गूढ मंत्र हो प्राप्त यत्र ।
यह सोच सती बैठी लिखने को विनय-पत्र ॥

"शरणागत-वत्सलध्वज रिपु गज के अंकुश ।
दुःख-शैल हित वज्र सदृश देखते विदुष ॥

महाराज राजेश्वर के युग कमल चरण ।
दीनभिक्षुणी विनत दूर से करे नमन ॥

करने को निज मधुर आश-तम का भेदन ।
कातर कानन से ही करती आवेदन ॥

महाराज श्री महायज्ञ में हैं दीक्षित ।
वाम अंक में नव बामा होगी वीक्षित ॥

होती होगी मुग्ध मुग्धबामा शतगुण ।
बढ़ते होंगे सकल आपके भी सद्गुण ॥

यज्ञ काल में आप करेंगे दान तभी ।
अमित रत्न पट वस्त्र और धन धान्य सभी ॥

पूर्णकाम होंगे याचक समुदाय वहाँ ।
मनमें भिक्षा उठी हमारे एक यहाँ ॥

तुच्छ भीख के लिए न होंगे नाथ कृपण ।
दान सिंधु हैं आप और धन दया रतन ॥

मैं हूँ कौन ? जानना इसको नहीं तुम्हें है आवश्यक ।
रहे सदा तुम तपस्वियों के दुख अशान्ति के हो नाशक ॥

बनवासी मुनियों के हित कुछ भी है तुम्हें अदेय नहीं ।
मैं तपस्विनी हूँ तुम मुझको समझ न लेना हेय कहीं ॥

आज तुम्हारे निकट बैठ जो बनी अंक की है भाजन ।
भक्ति भाव से उसे देखते होंगे सब जगती के जन ॥

पूर्व काल में घोर तपस्या उसने की थी कौन।
कितने समय कहां बैठी थी कौन मंत्र जप मौन?

इतना ही यदि मुझे बतादें कान्त! कहीं?
अन्य किसी भी धन की इच्छा मुझे नहीं॥

कोटि कोटि हयमेध यज्ञ में होता जितना दान।
उससे भी अत्यधिक इसे में मानूँगी भगवान॥

केवल एक अन्य वार्ता का तुमसे है अनुरोध।
इस दुखिया के यमज तनय भी हैं अत्यन्त अबोध॥

पितृ क्रोड़ में बैठ न पाए उनका यही अभाग।
जन्म काल में नहीं जान पाए स्व-तात अनुराग॥

जननी के जीवन में क्रन्दन उपजाना।
आता है वीणा में रामायण गाना॥

कौन नहीं रो उठा? लिए मानवी हृदय।
हो जाते तरु लता गुल्म भी जहाँ अथय॥

चरित तुम्हारे सुनकर सदा हुए मोहित।
जाते हैं शिशु उभय आज मुनिराज सहित॥

करने को आपके चरण—पंकज—दर्शन।
आकर्षित कर ले जाते है उनका मन॥

तुम्हें सुनाएँगे दुख की प्राचीन कथा।
जिसे श्रवण कर दुखिया उर होती व्यथा॥

नहीं सुनू तो भी उसके प्रति कोमल मन।
नहीं कर सकूं मैं मनका औत्सुक्य दमन॥

धीर श्रेष्ठ! जब आप उसे सुन पाएँगे।
दीना वैदेही की स्मृति जो लाएँगे॥

स्वप्न मान मैथिली प्रणय को हे नर वर।
पुलकित वदना नई प्रणयिनी को लख कर॥

लिखती जाती पत्र जानकी हृदय विकल।
जिसे धो रहा निकल निकल नयनों का जल॥

लिखूँ और क्या ! सोच रही अपने मन में ।
लव-कुश मुदमय विहँग आ गए उन क्षण में ॥

बोले जननी धन्य धन्य वे अवध पती ।
धन्य प्रणयिनी उनकी सीता भाग्य वती ॥

अश्वमेध करते हैं कौशल्या नन्दन ।
दूत एक ले करके आया आमंत्रण ॥
उससे ही सब पूछ हुए हम भी अवगत ।
राम चन्द्र के हेतु आज यह धन्य जगत ॥

रघुकुल मणि ने खण्डित जन अपवाद किया ।
प्राण प्रणयिनी सीता को भी त्याग दिया ॥

जब अश्वमेध में सहधर्मिणि का पड़ा काम ।
तब स्वर्णमयी सीता समुपस्थित भाग वाम ॥

जननी ! क्या उनके हित दयिताएँ थीं दुर्लभ ।
इच्छित न अन्य जाया थीं वे सीता-वल्लभ ॥
कहाँ गई सीता क्या बीता जीवन में ।
जान न पाए यह कुछ भी रामायन में ॥
जाएँगे देखने राम—पद—पद्म सुघर ।
ले चलने को साथ कह रहे थे मुनिवर ॥

सुकुमारों की वाणी सुधा सिंधु लहरी ।
मार्जित कर सीता जीवन को फिर छहरी ॥

ऊष्ण रजत से हुआ हृदय उत्तम महा ।
राम सनेह-जलद-जल में था डूब रहा ॥

मन में कहती थी मैं हूँ चिर पाप मयी ।
लिखने बैठी भाषा प्रभु-उर ताप मयी ॥

मैं तो हूँ अबला अति ही दुर्बल हृदया ।
मेरे प्रभु की किन्तु अगाध असीम दया ॥

क्षमा करो अपराध नाथ हे क्षमा सिंधु ।
विधिबश मैं बनीं तुम्हारे उर की गरल बिन्दु ॥

पत्र छिपा कर बोली प्रकटित हर्ष नवल।
जाओ वत्य देखने नरपति चरण-कमल ।।
मुनि कहते थे वहाँ सुनाना मधुर गान।
जो है स्वभाव से सत्य सुधा के ही समान ।।
पुण्यद होकर उस यज्ञ क्षेत्र में सुधा स्रोत
कर देगा घुस प्रत्येक हृदय को ओत प्रोत ।।
जब तुम्हें बुलाएँ राघव जाकर सन्निधान।
प्रणिपात भक्ति से करना पद वन्दन विधान ।।
देखोगे तुम फिर वहां उन्हीं के अग्रज त्रय।
करना प्रणाम उनके चरणों में अति सविनय ।।
वहीं राजमाता के पावन चरण कमल।
रज को शीश लगा कर, करना भाग्य सकल ।।
वैदेही की बहनों के पाकर दर्शन।
सविश्वास सीता सम करना पद-पर्सन ।।
पूछें जब कोई भी हो तुम किसके नन्दन।
उत्तर देना "हम हैं उभय तापसी धन" ।।
हुए प्रफुल्लित सुनकर के प्रिय मातृ वचन।
भर आया नव कौतूहल से उनका मन ।।
भोजन और शयन के प्रति थे वे अनमन।
राम प्रशंसा में करता था उर नर्तन ।।
राम कथा में लीन परस्पर मोद में।
चले गये दोनो निद्रा की गोद में ।।
स्वामिभक्ति-सरि-श्रोत जानकी का जीवन।
कर वैठा मानव-उर सीमा का लंघन ।।

× × × × ×

वारह वर्षों से शय्या दृग जल से प्लावित करके।
मेरे अंक समाती धीरे एक बार आ करके ।।
कितना भी मैं मधुर भाव में करूँ आज आह्वान।
सुनती नहीं कर रही सुरपुर-राज्य-ओर प्रस्थान ।।

नयनों की प्रतिमा है उसके यमज कुँअर।
हो जाएँगे क्षण में नयनों से अन्तर॥
दशों दिशाएँ उसके हित होंगी तम-मय।
हो न सकेगा जीवन हित में सुख-सूर्योदय॥
पतिप्राण हो कर उनके पाया क्या फल ?
देख सके दुखिया, कर दे भविष्य उज्ज्वल॥
प्राण आलबालों में दृग जल दान दिया।
अबला ने पति भक्ती का उद्यान किया॥
वहाँ न फूले फूल नहीं फल पाए फल।
कहो न जीवन कैसे हो फिर घोर विकल ?
सुमा योग माया ने, बोली चल सजनी।
शेष तभी हो आई थी शीतल रजनी॥
अभी शीघ्र दोनों चल करके सती निकट।
कर देंगी उसके भविष्य का रहस प्रकट॥
निद्रा साथ योगमाया आई सत्वर।
घुसीं उभय सीता की कुटिया के भीतर॥
स्वर्ग ज्योति से हुआ तभी कानन उज्ज्वल।
दिव्य सुरभि से पूर्ण हो गया पृथ्वीतल॥
सौरभ से सीता के प्राण हुए पुलकित।
प्रभा पुंज से झँपे नैन होकर विचलित॥
दृष्ट हुई जानकी-प्रभा से ज्योति मयी।
उसकी आभा निकल मही पर फैल गई॥
आलोकित श्री राम रत्नमय सिंहासन।
सीता सहित विराजित थे पुलकित आनन॥
राघव की गोदी मैं कुश सीता के लव।
छत्र लिए थे खड़े पास उर्मिला-विभव॥
धवल चन्द्रिका सुचारु चामर-चालन।
भरत निरत हो करते थे स्वधर्म पालन॥

विरचित मोर पंख जाली-से सुभग व्यजन।
झलते थे निज कर में लेकर रिपुसूदन ॥
सबकी जीवन ज्योति भविष्योंन्मुख हो कर।
स्रोतास्विनी रूप में बहती धार प्रखर॥
कोटि कोटि नर-नारी उसको तीर्थ मान।
पावन सरिता में स्रोत बीच करते स्नान॥
काल सिंधु की ओर जा रही दूर धार।
जो यथा समय अपना स्वरूप करती प्रसार॥
फिर नभ मंडल में देववृन्द विद्याधर गण।
मिलकर करने सुमनोहर सुमनों का वर्षण॥
अमर असुर नर नाग अप्सरा आदि सभी।
भरने लगे नाद "जय सीता-राम" तभी॥
धरा धाम में प्राण प्राण में नगर नगर।
नदी नाव सागर जहाज कन्दरा डगर॥
दिवस तथा दिवसावसान निशि प्रात समय।
सुखी दुखी धन हीन तथा धनवान हृदय॥
सबसे उच्चारित होता 'जय सिया—राम"।
हो गई देख कर मुग्ध जिसे ललना ललाम॥

समाप्त